ओ३म्

गुरुकुल–पत्रिका

सम्पादक : रामप्रसाद वेदालङ्कार
आचार्य एवं उपकुलपति
सह सम्पादक : डॉ० सत्यव्रत राजेश
प्रवक्ता वेद विभाग,
प्रो० वेदप्रकाश शास्त्री
प्रवक्ता संस्कृत विभाग
प्रकाशक : डॉ० जबरसिंह सेंगर (कुलसचिव)

विषय–सूची

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

कार्तिक २०३६ | वर्ष : ३४, अंक : ८
नवम्बर १६८२ | पूर्णांक : ३३८

श्रुति सुधा

भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः ।
भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ साम० १११ ॥

अन्वयः—सुभग ! आहुतः अग्निः नः भद्रा [भवतु], रातिः भद्रा [भवतु], अध्वरः भद्रः [भवतु] उत प्रशस्तयः भद्राः [भवन्तु] ।

सं० अन्वयार्थः—हे शोभनैश्वर्ययुक्त प्रभो ! भली-भांति ध्यान किया हुआ परमेश्वर वा आहुतियों से आहुत किया हुआ अग्निदेव हमारे लिये कल्याणकारी हो, हमारा दिया हुआ दान कल्याणकारी हो, हमारा हिंसारहित यज्ञ कल्याणकारी हो, और हमारी की गई प्रशस्तियाँ-प्रशंसाएं-स्तुतियाँ कल्याणकारिणी हो ।

अन्वयार्थः—(सुभग ! आहुतः अग्निः नः भद्रः) हे उत्तमैश्वर्यमय प्रभो ! अच्छी प्रकार से ध्यान मे बुलाया गया, प्रकाशस्वरूप परमेश्वर वा घृत-सामग्री आदि द्वारा परितृप्त किया हुआ अग्निदेव हमारे लिये सुखकारी और कल्याणकारी हो, (रातिः भद्रा हमारा दिया हुआ दान हमारे लिये सुखकारी और कल्याण-कारी हो, (अध्वरः भद्रः) हमारा हिंसारहित किया हुआ अध्यात्म यज्ञ हमारे लिये सुखकारी और कल्याणकारी हो । (उत प्रशस्तयः भद्राः) और हमारी प्रशंसाएं-स्तुतियाँ भी हमारे लिये सुखकारिणी और कल्याणकारिणी हों ।

साधकों-उपासकों को चाहिये कि वे जो यज्ञ करें, दान करें, पुण्य करें, अहिंसनीय अध्याम यज्ञ करें और उस में उस प्यारे और सब जग से न्यारे प्रभु का आह्वान करें तो वे सब ऐसे करें कि जिससे उन्हें इस लोक में सुख मिले और परलोक में उनका कल्याण हो ।

महापुरुषों के वचन—

माता-पिता आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्त्तव्य—

सन्तानों को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म और स्वभावरूप आभूषणों का धारण कराना माता-पिता, आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है। सोने, चाँदी, हीरा, माणिक, मोती, मूंगा आदि रत्नों से युक्त आभूषणों के धारण कराने से मनुष्य का आत्मा सुभूषित कभी नहीं हो सकता। क्योंकि आभूषणों के धारण करने से केवल देहाभिमान, विषयासक्ति और चोर आदि का भय तथा मृत्यु भी सम्भव है। संसार में देखने में आता है कि आभूषणों के योग से बालकादिकों की मृत्यु दुष्टों के हाथों से होती है।

(महर्षि दयानन्द-सत्यार्थ प्रकाश तृ० स०)

वे नर और नारी धन्य हैं—

जिन पुरुषों का मन विद्या के विलास में तत्पर रहता, सुन्दर शील-स्वभावयुक्त, सत्यभाषणादि नियम पालन युक्त, और जो अभिमान, अपवित्रता से रहित, अन्य भी मलीनता के नाशक, सत्योपदेश, विद्यादान से संसारी जनों के दुःखों के दूर करने से सुभूषित, वेदविहित कर्मों से पराये उपकार करने में रत रहते वे नर और नारी धन्य हैं।

—महर्षि दयानन्द—सत्यार्थ प्रकाश तृ० सं०)

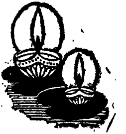
★ घृणा को केवल प्रेम से ही जीता जा सकता है—महात्मा गांधी

★ जो वासनायुक्त हो गया वही मुक्त है—विनोबा

★ जीवन फूल है और प्रेम उस को सुगन्ध है।

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्त मानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥ कठोपनिषत् ॥

जो दुराचार से पृथक् नहीं, जिस को शान्ति नहीं, जिस का आत्मा योगी नहीं और जिसका मन शान्त नहीं है, वह संन्यास ले के भी प्रज्ञान से परमात्मा को प्राप्त नहीं होता।



महापुरुष चरितम्—

लोकमान्य तिलक—

सन् १६०७ में सूरत के कांग्रेस-अधिवेशन की समाप्ति पर लोकमान्य तिलक जब पूना लौटने के लिये वहाँ से स्टेशन जाने को तैयार हुए, तो लोगों ने सलाह दी—"आप पुलिस की मदद लेकर जाईये। अधिवेशन की सफलता से प्रोत्साहित हो, कुछ बदमाश रास्ते में जमा हैं और वे निश्चय ही आपको चोट पहुँचायेंगे।" तिलक ने सहज स्वभाव से कहा, "पुलिस की मदद लेकर पहुँचने बजाए, मैं अपने देश वासियों के हाथों मरना अधिक श्रेयस्कर समझूंगा।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की मितभाषिता प्रसिद्ध थी। एक बार उनके एक शिष्य ने दूसरे शिष्य से शर्त लगाई कि वह आचार्य जी से एक बार में पाँच या उससे भी अधिक शब्द कहलवा देगा। आचार्य जी के पास पहुँचकर कुछ बेधड़क बनने का प्रयास करते हुए वह बोला—"बाबू जी, मैं ने इस से शर्त लगाई है कि मैं एक बार में कम से कम पांच शब्द आप से कहलवा दूंगा।"

"तुम हार गए।" शुक्ल जी ने उत्तर दिया।

महात्मा गांधी—

आजादी मिलने के बाद, कुछ कांग्रेस कार्यकर्ता दिल्ली नगर में बापू का सौंपा हुआ कोई कार्य कर रहे थे। उन दिनों सारे भारत में ही हिन्दु-मुसलमान एक-दूसरे के खून के प्यासे थे। एक दिन शाम को किसी कार्यकर्ता ने बापू को एक बड़ी दर्दनाक सूचना दी।

बापू बोले—"इस तरह इन घटनाओं का अन्त न होगा।" और बापू ने उपवास व्रत ले लिया। इस पर दिल्ली के कांग्रेस कार्यकर्ताओं को बड़ी चिन्ता हुई।

अगले दिन शाम के समय जब वे बापू के पास पहुँचे, तो बापू बहुत खुश नजर आए। उन्होंने पूछा—"बापू, आज आप इतने प्रसन्न क्यों नजर आ रहे हैं ?" बापू बोले—"कल तक मैं केवल अन्याय की बातें सुनता था और सुनकर मौन हो जाता था। अब मुझ में अन्याय का विरोध करने की शक्ति आ गई है और मैं ने अन्याय को दूर करने के लिये कमर कस ली है। मेरे लिये इससे अधिक खुशी की बात और क्या हो सकती है ?"

संयुक्त राष्ट्रसंघ एवं निशस्त्रीकरण—

—श्रीमती पूनम सागर
प्रवक्ता (इतिहास विभाग) मानविकी विभाग रुड़की वि० वि० रुड़की

राष्ट्रसंघ अपने उद्देश्य में पूर्णतया असफल हुआ और १६३६ में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति भंग हो गई और द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ गया। प्रथम विश्वयुद्ध के समय यह विचार राजनीतिज्ञों के मस्तिष्क में आया था कि युद्धों को रोकने के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की आवश्यकता है अतः युद्ध समाप्त होते ही राष्ट्रसंघ की स्थापना हुई। द्वितीय विश्व युद्ध में भी प्रारम्भ से एक नवीन शक्तिशाली अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की योजना बननी प्रारम्भ हो गई थी। मित्रराष्ट्रों ने उसकी आवश्यकता जोरों से अनुभव की थी अतः युद्ध के दौरान ही अनेक संधियां कर भावी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की रूप रेखा बना ली गई। युद्ध के बाद उसे क्रियान्वित करना शेष था। संयुक्त राष्ट्र की स्थापना एक दिन के प्रयत्न या किसी एक राष्ट्र का फल नहीं। इसके निर्माण का कार्य वर्षों पहले प्रारम्भ हो गया था तथा अनेक राष्ट्रों ने इसके निर्माण में सहयोग दिया था। अमेरिका के राष्ट्रपति रुजवेल्ट ने तथा ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री चर्चिल ने इसके निर्माण की पहल की।

यद्यपि संयुक्त राष्ट्रसंघ का जन्म २४ अक्तूबर १६४५ को हो चुका था पर इसका प्रथम अधिवेशन १० फरवरी १६४६ को लन्दन के प्रसिद्ध वैस्टमिनिस्टर हाल में सम्पन्न हुआ। संयुक्त राष्ट्रसंघ के संविधान को चार्टर का नाम दिया गया। संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर का सार उसकी प्रस्तावना में दे दिया गया है जिसमें संयुक्त राष्ट्रसंघ के उद्देश्य एवं सिद्धान्तों का उल्लेख कर दिया गया है। प्रस्तावना में लिखा है कि "हम संयुक्त राष्ट्रसंघ के लोग यह दृढ़ निश्चय करते हैं कि हम भावी पीढ़ियों को युद्ध की भयंकरता से जिसने हमारे समय दो बार समस्त मानव समाज को अत्यधिक पीड़ा पहुँचाई है बचाने का प्रयत्न करेंगे। हम मानव के मौलिक अधिकारों, मानव व्यक्तित्व को प्रतिष्ठा तथा मूल्य में, स्त्री तथा पुरुषों के समान अधिकारों में तथा छोटे एवं बड़े राष्ट्रों की समानता में विश्वास प्रकट करते हैं। अतः ऐसी परिस्थितियों को स्थापित करने के उद्देश्य से जिसमें न्याय, संधियाँ और अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अन्य साधनों के प्रति सम्मान की भावनाओं को स्थाई रूप प्रदान किया जा सके। सामाजिक प्रगति तथा अच्छे जीवन स्तर को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से तथा इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये सहिष्णुता और शान्तिपूर्ण जीवन को व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिये अपनी शक्तियों को अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा की स्थापना के लिये प्रयुक्त करने के लिये यह प्रतीक्षा करते हैं कि हम एक दूसरे के साथ उन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये हमेशा सहयोग प्रदान करेंगे। इसलिये हमारी सरकारों ने संयुक्त राष्ट्रसंघ के इस घोषणा पत्र को स्वीकार किया है और हम एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना करते हैं जो संयुक्त राष्ट्रसंघ के नाम से ज्ञात होगा।" प्रस्तावना के प्रारम्भिक शब्दों, "हम संयुक्त राष्ट्र के लोग" से ऐसा प्रतीत होता है कि यह संस्था विश्व के लोगों द्वारा अपनी भलाई के लिये बनाई गई है। इन शब्दों में प्रजातांत्रिक भावना प्रकट होती है परन्तु यथार्थ बात यह है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ का चार्टर सदस्यों राज्यों की सरकारों के प्रतिनिधियों द्वारा बनाया गया दस्तावेज है न कि विश्व जनता द्वारा निर्मित।

संयुक्त राष्ट्रसंघ विश्व के उन राष्ट्रों का संगठन है जिन्होंने चार्टर पर हस्ताक्षर किये हैं और यह शपथ ली है कि वे राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक योजनाओं के द्वारा विश्व शान्ति की स्थापना करेंगे। इस आज्ञा पत्र में, इस संस्था को किसी भी राज्य के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार प्रदान नहीं किया गया है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के निम्नलिखित उद्देश्य हैं—अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा बनाये रखना, भावी पीढ़ी को भयंकर युद्धों की विभीषिका से मुक्त रखना, समान अधिकार तथा आत्म निर्णय के आधार पर राष्ट्रों में मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों और सहयोग को बढ़ावा देना, विश्व के आर्थिक, समाजिक, सांस्कृतिक तथा अन्य मानवतावादी समस्याओं का समाधान करना, अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को शान्तिपूर्ण वादविवादों द्वारा, अन्तर्राष्ट्रीय कानून और न्याय के आधार पर सुलझाना, इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये संयुक्त राष्ट्रसंघ को केन्द्र बनाना -

Acc. to article 26 of U. N. O. Charter "In order to promote the establishment and maintenance of internal peace and security with the least diversion for armaments of the world human and economic res urce, the security Council shall be responsible for formulating...............plans to be submitted to the members of united Nations for the establishment of asystem for the regulation of armaments."

मार्गेन्थ्यु के अनुसार "निःशस्त्रीकरण ने राजनैतिक उत्तेजना को कम कर राजनैतिक व्यवस्था को सुधारा तथा एक दूसरे राष्ट्र की आदर भावना को उत्पन्न किया, इस प्रकार की निःशस्त्रीकरण की देन ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था को बनाने तथा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की स्थापना करने में स्थापना करने में सहायता की। यद्यपि यह एक महत्वपूर्ण देन थी तथापि यह स्पष्टतया अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा व्यवस्था की समस्या को सुलझाने का कोई व्यवहारिक हल न था। हथियारों की दौड़ समाप्त करने के लिये कुछ या सभी हथियारों को कम या समाप्त कर देना निःशस्त्रीकरण है।" निःशस्त्रीकरण वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्या है। इस समस्या पर मानव जाति का भावी भाग्य निर्भर करता है। निःशस्त्रीकरण विश्व शान्ति एवं सुरक्षा के भविष्य को निश्चित करने वाली समस्या है। राष्ट्रसंघ द्वारा की गई इस विषय में समस्त कोशिशें बेकार हुईं और द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ गया। ६ वर्ष तक इन भयानक अस्त्रशस्त्रों द्वारा मानव जाति का भारी विनाश होता रहा। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद से ही निःशस्त्रीकरण का प्रयास प्रारम्भ हो गया था पर विजेताओं ने पराजित देशों का एक तरफा निशस्त्रीकरण किया था। मित्र राष्ट्रों द्वारा रखी गई निःशस्त्रीकरण की सभी योजनायें आपसी मतभेदों के कारण असफल हो गई अतः पराजित देशों ने भी सब बन्धन तोड़ शस्त्रीकरण की ओर पग उठा लिया। परिणामस्वरूप विश्व को द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका सहनी पड़ी।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद निःशस्त्रीकरण की समस्या पहले से कहीं अधिक जटिल हो गई। युद्ध से पूर्व तो यह प्रश्न पुराने अस्त्रशस्त्रों तक ही सीमित था पर द्वितीय विश्वयुद्ध के समाप्त होते होते अणुबम के प्रयोग ने इस प्रश्न को और भी उलझा दिया। द्वितीय विश्वयुद्ध के अन्त तक परमाणु बम का रहस्य केवल अमेरिका को ज्ञात था पर शीघ्र ही यह भेद रूस, ब्रिटेन, फ्रांस और लालचीन को ज्ञात हो गया अतः विश्व के शान्ति प्रेमी लोगों ने माँग आरम्भ कर दी कि शस्त्रीकरण की दौड़ को समाप्त किया

जाये, शस्त्रों पर व्यय को कल्याणकारी कार्यों पर खर्च किया जाये। संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर की दूसरी धारा में निःशस्त्रीकरण का उल्लेख किया गया है। १९४६ के अन्तिम दिनों में सर्वप्रथम रूस ने निःशस्त्रीकरण के प्रश्न पर विचार करने के लिये प्रस्ताव रखा था। १४ सितम्बर १९४६ को संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा ने प्रस्ताव को पासकर सुरक्षा परिषद् को इस आशय का आदेश दिया कि वह हथियारबन्दी की होड़ को बन्द करे और निःशस्त्रीकरण के लिये योजना बनाये। इसके बाद दो आयोगों की स्थापना की गई। अणुशक्ति आयोग तथा परम्परागत शस्त्रास्त्रों के लिये आयोग का उद्देश्य था परमाणु बम के उत्पादन को सीमित करना तथा दूसरे आयोग का उद्देश्य था शस्त्रों तथा सेना को कम करने की योजना बनाना। परन्तु निःशस्त्रीकरण की समस्या कोई साधारण समस्या नही रही थी। उस समय अमेरिका परमाणु बम पर एकाधिकार रखता था, रूस अपने को कमजोर समझकर यह सुझाव रखता था कि अणुबम के उत्पादन पर शीघ्र नियन्त्रण रखना चाहिये तथा जितने बमों का निर्माण हो चुका है उन्हें जल्दी नष्ट कर देना चाहिये। उस समय तक शीतयुद्ध भी समाप्त हो चुका था और दुनिया के देश दो गुटों मे बट चुके थे। निःशस्त्रीकरण सम्मेलन में दोनों गुटों की ओर से तरह-तरह के प्रस्ताव रखे जाने लगे। अमेरिका ऐसे प्रस्ताव रखता था जो रूस को मान्य न हो और रूस ऐसे प्रस्ताव रखता था जो अमेरिका को स्वीकार न हो। अनेक सैन्य संगठन और संधियाँ कायम की जाने लगी और विश्वशान्ति का भविष्य अन्धकारमय दिखाई देने लगा। U. N. O. द्वारा स्थापित आयोगों का कार्य ठप्प हो गया। अक्टूबर १९५० में अमेरिकन राष्ट्रपति ट्रूमैन के सुझाव पर महासभा ने निःशस्त्रीकरण आयोग की रचना की गई पर इसका भी अच्छा परिणाम न निकला। १९५३ में गतिरोध बढ़ जाने पर महासभा के सुझाव पर १९५४ में एक उपसमिति का निर्माण हो गया जिसके रूस, ब्रिटेन, फ्रांस, कनाडा सदस्य बने। समिति इस प्रश्न पर कई वर्षों तक विचार करती रही पर परिणाम निराशाजनक रहे।

रूस यह कभी नहीं चाहता था कि निःशस्त्रीकरण हो। उसके द्वारा रखी गई सभी योजना केवल विश्व जनमत को आकर्षित करने के लिये थी और अव्यवहारिक थी। वे अमेरिका को शांतिविरोधी, साम्राज्यवादी, युद्धलोलुप कहकर बदनाम करने पर तुला था। किसी भी योजना पर दोनों गुटों में एकमत नहीं था और संयुक्त राष्ट्रसंघ महासभा द्वारा रखे गये प्रस्ताव इस प्रकार युद्ध के सामने बेकार हो जाते थे।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के १९४८ के अणुशक्ति आयोग की असफलता के बाद १९५२ में निःशस्त्रीकरण आयोग बना पर यह आयोग भी असफल हो गया क्योंकि इसकी सिफारिशों को राष्ट्रों ने मानने से इन्कार कर दिया। राष्ट्रपति आइजकहावर ने U. N. O. की महासभा में ८ दिसम्बर १९५३ को निःशस्त्रीकरण की नवीन योजना रखी और सुझाव दिया कि सभी राष्ट्र अपनी-अपनी सेनाओं का विवरण दें तथा अन्य सेना सम्बन्धी सूचनाओं के विषय में परस्पर विनमय करें तथा इन सूचनाओं की जांच परस्पर खुली उड़ान द्वारा की गई पर रूस उनके लिये तैयार न हुआ। यह भी सुझाव था कि सभी राष्ट्र अपने अणुआयुधों को U. N. O. को सौंप दे। U, N. O. द्वारा अणु शक्ति के परीक्षण की व्यवस्था भी इस योजना के अन्दर थी पर रूस इसके लिये भी तैयार न था अतः यह योजना भी विफल हो गई।

१६५४ में U. N. O. की उपसमिति ने अक्टूबर १६५४ में अपने दो सुझाव सामान्य सभा के सामने रखे कि किसी राष्ट्र के पास इतनी न रहे जो दूसरे राष्ट्रों के लिये खतरा बना रहे। इस सुझाव के मानने में परेशानी यह थी कि सेना का अनुपात निर्धारित करने का आधार क्या रहे। फ्रांस व ब्रिटेन ने प्रस्ताव रखा कि अणुशक्ति का प्रयोग शान्ति के लिये किया जाय। समिति ने इस सुझाव को मानकर अपने प्रतिवेदन में सम्मिलित कर लिया पर यह प्रस्ताव भी निरर्थक था क्योंकि इसमें शस्त्रों के नाम दिये थे। इस रिपोर्ट को भी दोनों गुटों ने नहीं माना। निःशस्त्रीकरण की समस्या को सुलझाने के लिये एक शिखर सम्मेलन बुलाने की योजना बनी। इस सम्मेलन में यह निश्चय किया गया कि संयुक्त राष्ट्र संघ का आयोग अपना कार्य जारी रखे और यह विश्वास व्यक्त किया गया कि विश्वशान्ति एवं सुरक्षा के लिये निःशस्त्रीकरण अनिवार्य है और अणुशक्ति का प्रयोग मानव मात्र के कल्याण के लिये और आर्थिक उत्थान के लिये किया जाना आवश्यक है। अभी तक सभी शिखर सम्मेलन की अपेक्षा यह शिखर सम्मेलन अधिक सफल रहा।

२६ सितम्बर १६५७ को संघ की महासभा में भारत ने एक प्रस्ताव रखा जिसमें निःशस्त्रीकरण आयोग व उपसमिति को सदस्य संख्या बढ़ाने तथा आणविक शस्त्रों को समाप्त करने पर जोर दिया था। यह प्रस्ताव महासभा ने स्वीकार कर लिया था पर महाशक्तियों ने इसमें रुचि नही ली।

३१ अक्टूबर १६५८ में निःशस्त्रीकरण सम्मेलन आरम्भ हुआ। महासभा ने अपने प्रस्ताव में आग्रह किया कि जेनेवा सम्मेलन होने तक समस्त प्रकार के आणविक परिक्षण सदैव के लिये बन्द हो और ब्रिटेन व अमेरिका का विचार था कि परिक्षण एक वर्ष तक बन्द कर दिया जाये। यद्यपि जेनेवा सम्मेलन में कोई स्थाई समझौता न हुआ छोटे मोटे समझौते अवश्य हुये।

१६५६ में रूस के प्रधानमन्त्री ख्रुश्चेव ने संघ की महासभा में एक भाषण में कहा कि पूर्ण सर्वमान्य निःशस्त्रीकरण होना चाहिये तथा चार वर्ष में हर राष्ट्र इस प्रकार निःशस्त्रीकरण करे कि अन्त में उसके पास लड़ने का कोई साधन न रहे। राष्ट्र के पास इतनी ही सेना रहे जिससे वह आत्मरक्षा कर सके। रूस ने १२ लाख सेना की कटौती कर दी। इस प्रस्ताव का प्रत्येक राष्ट्र ने स्वागत किया। यद्यपि अधिकांश सदस्यों ने रूस के प्रस्ताव का समर्थन किया पर पश्चिम शक्तियों ने इसकी उपेक्षा की।

१६६० में निःशस्त्रीकरण की समस्या को सुलझाने के लिये पुनः जेनेवा सम्मेलन का आयोजन किया गया। जेनेवा में दो सम्मेलन एक साथ चले। एक दस राष्ट्रों का सम्मेलन था जो पूर्ण निःशस्त्रीकरण पर विचार कर रहा था, दूसरा सम्मेलन आणविक परीक्षणों को निषेध करने के सम्बन्ध में था। यह सम्मेलन भी दोनों गुटों के मतभेद के कारण कोई निर्णयन कर सका। इस प्रकार विश्व की दो महान् शक्तियों के कारण १६४६ से १६६० तक जितने भी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुये, सुझाव रखे गये, महासभा में प्रस्ताव रखे गये, सफल नहीं हुये। अमेरिका एवं रूस सदैव एक दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न करते थे और एक दूसरे के प्रस्ताव को ठुकरा देते। रूस ने दस राष्ट्रों के आयोग का बहिष्कार कर दिया।

२५ सितम्बर १९६१ को संघ की महासभा में संघ के महासचिव हैमरशील्ड को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते समय अमेरिका के राष्ट्रपति कैनेडी ने प्रस्ताव रखा कि सभी राष्ट्र परीक्षण कर प्रतिबन्ध लगाने की सन्धि पर हस्ताक्षर करें। अन्तरिक्ष में परमाणु प्रयोगों की रोकथाम हो। परमाणु वाहनों के उत्पादन पर रोक लगे। पर इन सब पर भी सदा को भांति कोई अमल नहीं हुआ। राष्ट्रपति कैनेडी का प्रस्ताव मार्च १९१२ में अमेरिकन प्रतिनिधि ने अठारहवें निःशस्त्रीकरण सम्मेलन जेनेवा में प्रस्तुत किया। पर इसी बीच क्यूबा के मामले में दोनों गुटों ने तीव्र मतभेद हो गये।

१० जून १९६३ को अमेरिका के राष्ट्रपति ने घोषणा की कि आणविक परीक्षण प्रतिबन्ध के सम्बन्ध में रूस, अमेरिका व ब्रिटेन के प्रतिनिधियों में वार्ता होनी चाहिये। तीन राष्ट्रों ने मास्को में २५ जुलाई १९६३ को संधि पर हस्ताक्षर किये। यह संधि अनिश्चित काल के लिये हुई थी और ३ महीने का नोटिस देकर कोई भी सदस्य इस सन्धि का परित्याग कर सकता था। संधि पर हस्ताक्षर कर्ताओं ने जल, थल, वायु में आणविक परीक्षण न करना स्वीकार किया। केवल पृथ्वी के अन्दर ही परीक्षण किये जा सकते थे। यह संधि परमाणु शस्त्रों के परिक्षण के नियमन की दशा में पहली सफलता थी।

जून १९६४ में जेनेवा में अमेरिका ने सम्मेलन में अपने कुछ सुझाव रखे। इसमें अमेरिका व रूस के बमवर्षक विमानों को नष्ट करने की भी योजना थी तथा साथ में आणविक शक्ति के कल्याणकारी कार्यों हेतु प्रयोग की भी व्यवस्था थी। इसी समय इग्लैंड के मजदूर दल के नेता हेरल्ड विल्सन ने भी निःशस्त्रीकरण सम्बन्धी कुछ विचार दिये। ५ अक्टूबर १९६४ को काहिरा में तटस्थ राष्ट्रों का एक सम्मेलन हुआ। इसमें मांग की गई कि विश्व के सभी राज्यों का एक निःशस्त्रीकरण सम्मेलन बुलाया जाये पर पश्चिमी राष्ट्रों ने इसका विरोध किया।

७ सितम्बर १९६४ को संघ की महासभा में रूसी विदेशमन्त्री ग्रोमिको ने अपना ११ सूत्री प्रस्ताव रखा। अमेरिकन गुट ने उसको अस्वीकार कर दिया। २३ जुलाई १९६५ को पुनः जेनेवा में निःशस्त्रीकरण सम्मेलन हुआ, इसमें अभी तक सम्मेलन द्वारा किये गये प्रयासों की रिपोर्ट प्रस्तुत की गई। आगे भी इस विषय में कार्य हुये पर सभी अमेरिकन मतभेदों के कारण कुछ निर्णय न हो सका।

१९ नवम्बर १९६५ को ६१ तटस्थ देशों ने जिसमें भारत भी एक था, संघ की राजनीतिक समिति के काहिरा सम्मेलन को लागू किये जाने सम्बन्धी प्रस्ताव रखा जिसमें यह कहा गया कि साम्य-वादी चीन सहित १८ राष्ट्रों का सम्मेलन समस्या पर विचार करने हेतु १९६६ से पूर्व काहिरा में बुलाया जाये। इस प्रस्ताव को चीन ने ठुकरा दिया।

१७ राष्ट्रों का सम्मेलन २७ जनवरी १९६६ को शुरु हुआ। सम्मेलन प्रारम्भ होते ही महा-सचिव ने तार द्वारा मांग की कि परमाणु आयुद्धों के सम्बन्ध में इस बार अवश्य ही कोई कदम उठाया जाना चाहिये। पर दोनों गुटों में पुनः वादविवाद छिड़ गया और दोनों पक्षों के तीव्र मतभेद के कारण यह सम्मेलन भी असफल रहा।

नवम्बर १६६६ में संयुक्त राष्ट्रसंघ की राजनीतिक समिति ने परमाणु अस्त्रों के प्रसार तथा निर्माण सम्बन्धी नियन्त्रण के लिये एक समझौते का प्रस्ताव स्वीकार किया। संघ के ११० सदस्यों ने इसका समर्थन किया। इस प्रकार प्रस्तावित समझौते द्वारा परमाणु अस्त्र का निर्माण रोकना था। महा-समिति द्वारा पास उस समझौते को जेनेवा निःशस्त्रीकरण आयोग के सामने रखा गया। आयोग इसका मसविदा तैयार कर ही रहा था कि अमेरिका प्रतिनिधि फास्टर तथा रूसी प्रतिनिधि शाश्विन द्वारा दोनों देशों में मोटे तौर पर समझौता हो जाने की घोषणा कर दी। इस आश्चर्यजनक घोषणा से विश्व स्तब्ध रह गया।

२४ अप्रैल १६१७ को संयुक्त राष्ट्संघ की महासभा का अधिवेशन इस प्रस्तावित संधि पर विचार करने के लिये बुलाया गया। सात माह तक विचार विमर्श होता रहा। उसके बाद ११ जून १६६८ को साधारण सभा की राजनैतिक समिति ने अच्छे बहुमत से इसे स्वीकृति दे दी। समिति को आशा थी कि इस संधि को अधिकांश राष्ट्र स्वीकृति दे देगें। १३ जून को यह प्रस्ताव महासभा में प्रस्तुत हुआ। इसके पक्ष में ६५ व विरोध में केवल ४ मत पड़े तथा २१ सदस्य तटस्थ रहे। तटस्थ रहने वाले राष्ट्रों में भारत व फ्रांस भी थे। विरोध करने वाले राष्ट्रों में अल्वानिया, क्यूबा, जाम्बिया तथा रोमानिया थे।

अनेक त्रुटियों से पूर्ण होने पर भी यह संधि ऐतिहासिक व अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यदि इसी प्रकार निःशस्त्रीकरण की संधियों का क्रम बना रहे तो एक दिन यह समस्या अवश्य हल हो जायेगी। १६६८ की संधि से उत्साहित होकर १७ नवम्बर १६६६ को युद्ध के दृष्टिकोण से निर्मित शस्त्रों की समस्या लेकर अमेरिका व रूस की वार्ता फिनलंड की राजधानी हैल्सिकी में हुई। इस वार्ता के साथ दोनों देशों के प्रतिनिधियों ने वियना में वार्ता का चौथा दौर प्रारम्भ किया। यह आशा की गई कि अब दोनों महादेश निःशस्त्रीकरण की समस्या को गम्भीरतापूर्वक ले रहे है। इन देशों ने यह समझ लिया है कि आपस में टकराना उचित न होगा। १ अक्टूबर १६७२ में दोनों देशों ने परमाणु शक्ति में और न वृद्धि करने का समझौता किया।जो बहुत महत्वपूर्ण था तथा निःशस्त्रीकरण को समस्या को सुलझाने हेतु ठोस पग था।

१ अक्टूबर १६७२ की रूस अमेरिका संधि से यह विश्वास किया जाने लगा कि दोनों ही देश अब निःशस्त्रीकरण की ओर तेजी से बढ़ रहे हैं। १६७४ से पूर्व आणविक शस्त्रों से लैस ५ राष्ट्र रूस, अमेरिका, फ्रांस, ब्रिटेन एवं चीन ही थे। १८ मई १६७४ को भारत ने आणविक योजना के अन्तर्गत प्रथम बार परमाणु बम का विस्फोट किया। इससे विश्व में बड़ा आश्चर्य हुआ। पाकिस्तान तो भय के कारण कांप उठा और अमेरिका से अणुबम मांगने लगा क्योंकि उसे भारत से खतरा पैदा हो गया। भारत की सरकार ने घोषणा की कि वह आणविक शक्ति का प्रयोग शान्तिपूर्ण कार्यों में करेगा।

संयुक्त राष्ट्र संघ कोई संस्था नहीं है। अतः उसे विश्व राज्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। संयुक्त राष्ट्र संघ का विशेष अंग सुरक्षापरिषद् है और विश्व की शान्ति एवं सुरक्षा की जिम्मेदारी उसी पर है पर वीटो के विशेषाधिकार से वह सफलतापू क अपने कार्य सम्पन्न नहीं कर पाती है। महासभा

को एकता प्रस्ताव से महान् शक्ति प्राप्त हो गई है और वह सुरक्षापरिषद् के अधूरे कार्य पूर्ण कर सकती है। यद्यपि यह बात तो सही है कि संयुक्त राष्ट्र संघ को राष्ट्रसंघ की अपेक्षा अधिक सफलता प्राप्त हुई है पर स्थाई शान्ति अभी स्थापित नहीं हुई है। आज के युग में गुटबन्दी का साम्राज्य है। ये दोनों गुट साम्यवादी और पूंजीवादी सदैव एक दूसरे पर आवाजें कसा करते हैं। इन्हें अपने हित विश्वहित की अपेक्षा अधिक प्रिय हैं। संघ की महासभा इन गुटों का संघर्ष स्थल है। पाकयुद्ध इतना भीषण हो सकता है कि छोटे राज्य भयभीत हो जाते हैं। यह अवश्य है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ का कार्यकाल राष्ट्रसंघ से लम्बा हो गया है पर यह नहीं कहा जा सकता है कि अब कभी युद्ध न होगा। संयुक्त राष्ट्रसंघ यद्यपि राष्ट्रसंघ की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है पर उसके निर्णय अभी बाध्यकारी नहीं। शक्तियों पर संयुक्त राष्ट्रसंघ का कोई नियन्त्रण नही है, विनाशकारी भयानक अस्त्रशस्त्र का भय ही उन्हें युद्धों में कूदने से रोके हुये हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघ भी राष्ट्रसंघ के मार्ग पर जा रहा है अभी कोहिमा, वियतनाम, अरब इजराइल एवं पाकिस्तान, भारत के ही छोटे मोटे झगड़े हुए हैं। जिस दिन रूस और अमेरिका में ठन गई उस समय संयुक्त राष्ट्रसंघ कुछ न कर पायेगा। विश्व के सिर पर हमेशा 'डेमोक्लीज की तलवार' लटकती रहती है।



उपनिषदां ब्रह्मविद्यात्वम्—

प्रो० मनुदेव बन्धु, प्राध्यापक वेद विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय (हरिद्वार)

उपनिषत्साहित्यं संस्कृतवाङ्मयेऽतीव गौरवास्पदम् । ब्रह्मविद्या-अध्यात्मविद्या पराविद्या चेति नाम्ना इमाः कीर्त्यन्ते । उक्तञ्च "द्वेविद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च । तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति । अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ।" तन्न प्रधानतः कर्मकाण्डपराणां धर्मज्ञानसाधनीभूतानां षडङ्गोपेतानां वेदानामपराविद्यात्वम् परमपुरुषार्थसाधनीभूतानां ब्रह्मज्ञानकाण्डपराणामुपनिषदाञ्च पराविद्यात्वमिति विचारः ।

उपनिषदः खलु वेदान्तसंज्ञयाऽपि प्रसिद्धाः । सेयं संघा तासां वेदस्य अन्तं वेदान्तमित्यर्थमवष्टभ्येति प्रतीयते । सा च यजुर्वेदस्य चतुर्विंशतितमादन्तिमादध्यायादुपलभ्यमाना "ईशावास्योपनिषद" एवोपनिषदामारम्भणहेतुत्वादुपपद्यते । उपनिषच्छब्दोऽयं विशरणगत्यवसादनार्थात् सदेर्धातोः क्विप्प्रत्ययान्तान्निष्पन्न इत्युक्तपूर्वम् । सेयमविद्यादिसंसारबीजविशरणपटीयसी ब्रह्मविद्यायाः वाच्या उपनिषद् विद्या वेदमूलकत्वाद् वैदिकानेव राद्धान्तान् प्रतिपादयन्ती न खलु [illegible] तत्र प्रस्खलन्ती विलसति । परन्तु शब्दमात्रतो न जात्वर्थतोऽवभासमानं, यन्मतद्वैविध्यं श्रुति[illegible] [illegible] प्रयत्नसहस्रेणापि तच्छक्यं सम्भावयितुम् । वस्तुतो यथार्थमर्थमपवगच्छतामेव [illegible]तसामेवोपनिषत्सु विरुद्धा विभिन्नश्च पन्थानः सन्तीति मतमभिमतं सम्भवेन्न [illegible]तचक्षुषां सचेतसाम् । यतो ज्ञानं हि खलु तत्वनिष्ठं न कर्हिचिद् बुद्धिनिष्ठम् । बुद्धिभेदात् तत्वभेदमुन्मत्तं बिना को नाम उररीकुर्यात् ?

उपनिषत्सु आख्यानरूपेण बहवो दिव्या उपदेशाः समुपलभ्यन्ते । उपनिषद्रसरसिकाः सहृदयालवः श्रद्धालवः प्रणिभालयन्तु तावत् । तथा च कठोपनिषदि प्रेत्यभावविषयकं तत्वमाख्यानरूपेण प्रतिपादितम् । यच्च नाचिकेतमुपाख्याननाम्ना प्रसिद्धम् । तद्यथा नचिकेता नाम कश्चिदृषिकुमारः कदाचिद् यमलोकं गतः । तत्र यमेनाभ्यर्थितः स यमाद्वरत्रयमवृणोत् । तेषु वरेषु तृतीयो वरः मरणान्तरं मनुष्योऽस्ति न चेत्येतज्जिज्ञासात्मकः । तन्निशम्य यमस्तं प्रत्याह :—

"देवैरत्रापि विकिसितं पुरा नाणुरेष धर्मः, तस्मादन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्वेति ।" इत्थ विवृण्वन् नानाविधैः रमणीयरूपैः स्पृहणीयभोगवस्तुभिः प्रलोभयन्नपि यमो यदा नचिकेतसो दृढतरं चेतो विचालयितुमशक्नोत् तस्य च अनासक्त्या भक्त्या च सन्तुष्टस्तस्मै जननमरणे केवलं विकृतिरूपे, ब्रह्मज्ञानेनैव ते तीर्त्वा पुरुषः मोक्षपदमुपैतीत्येवमादिलक्षणां ब्रह्मविद्यामुपदिदेश:—

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते, कामा तेऽस्य हृदिस्थिताः ।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥ कठ० ६-१४ ॥

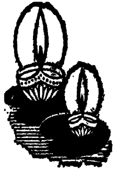
यथा द्वैतवादिनः स्वपक्षे—

"ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्यलोके, गुहां प्रविष्टौ परमे परार्द्धे ।
छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः ॥"

इत्युदाहरन्ति । तथा द्वैतवादविरोधिनोऽपि स्वपक्षे उपनिषदामन्यानि वचांसि पुरस्कुर्वन्ति । द्वैतवादं शब्दतः खण्डयन्तः आहुः—

"मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानाऽस्ति किञ्चन ।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥

इत्थमुपनिषदो ब्रह्म विद्यात्वमभ्युपपन्नम् ।



भारतीय शिक्षा को आर्यसमाज की देन—

—डा० भवानी लाल भारतीय, पी–एच० डी०

लाला लाजपतराय ने अपनी पुस्तक "दुःखी–भारत" में लिखा है कि अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारत में एक व्यवस्थित शिक्षा–प्रणाली प्रचलित थी। गांव-गांव में पाठशालाएं स्थापित थीं। जिनमें छात्र व्यवस्थित रूप से विभिन्न विद्याओं और शास्त्रों का अभ्यास करते थे। कालान्तर में देश में ब्रिटिश शासन व्यवस्था के स्थापित होने पर लार्ड मैकाले ने देश की शिक्षानीति में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किया। प्रचलित भारतीय शिक्षा–पद्धति का मूलोच्छेद कर अंग्रेजी शिक्षाप्रणाली की स्थापना इसी ध्येय से की गयी थी कि देश में एक ऐसा वर्ग उत्पन्न हो जो रंग और आकृति में चाहे भारतीय हो, परन्तु आचार–विचार, बुद्धि और मन से अंग्रेज होने का दम्भ भरे। लार्ड मैकाले को अपनी शिक्षा के सफल होने का पूर्ण विश्वास था, तभी तो १८३८ ई० में अपने पिता के नाम लिखे गये एक पत्र में उन्होंने यह विश्ववास व्यक्त किया "जो भी हिन्दू अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण कर लेता है, वह अपने धर्म के प्रति सच्ची श्रद्धा व विश्वास खो बैठता है। केवल कुछ दिखावे के रूप में मानते हैं और अनेक शुद्ध ईश्वरवादी बन जाते हैं। कतिपय अन्य ईसाई हो जाते है। मेरा यह पूर्ण विश्वास है कि शिक्षा की हमारी योजना पूरी तरह काम में लायी गयी तो अब से ३० वर्ष पश्चात् बंगाल के कुलीन घरानों में कोई भी मूर्तिपूजक (हिन्दू) नहीं रहेगा।"

भारत की शिक्षा–नीति को पाश्चात्य ढांचे के अनुसार ढालने का प्रयास अंग्रेज शासकों ने तो किया ही, ब्रह्म समाज के प्रवर्तक और भारतीय नवजागरण के सूत्रधार राजा राममोहन राय ने लार्ड मैकाले के ही स्वर मिलाकर अंग्रेजी शिक्षापद्धति का ही गौरव गान किया। यह उस समय की बात है जब बंगाल सरकार का विचार कलकत्ता में एक संस्कृत कॉलेज की स्थापना करने का था। प्राचीन शिक्षा–पद्धति के पक्षपाती लोग इस योजना से प्रसन्नता का अनुभव कर रहे थे। परन्तु राममोहन राय की दृष्टि में संस्कृत-शिक्षा का प्रचार अनावश्यक और प्रतिगामी कदम था। उन्होंने इस योजना के विरोध में एक पत्र तत्कालीन भारतीय गवर्नर-जनरल लार्ड एमहर्स्ट को दिया। पत्र में संस्कृत शिक्षा के विषय में जो विचार व्यक्त किये गये हैं उन्हें पढ़कर हमें खेद व आश्चर्य होता है। पत्र के प्रारम्भ में ही उन्होंने लिखा, हमें यह ज्ञात हुआ है कि सरकार पण्डितों के नियन्त्रण में एक संस्कृत विद्यालय स्थापित करना चाहती है जिसमें प्रचलित परिपाटी पर संस्कृत की शिक्षा दी जायेगी। इस विद्यालय से यही आशा की जा सकती है कि इसमें जो छात्र शिक्षा प्राप्त करेंगे उनके मस्तिष्क में व्याकरण के सूक्ष्म नियमों तथा दर्शन–शास्त्र की जटिलताओं को ठूंस-ठूंसकर भर दिया जायेगा, जिनका उन छात्रों तथा समाज के लिये कोई उपयोग नहीं है।

संस्कृत भाषा के अध्ययन को क्लिष्ट बताते हुए उसी पत्र में आगे लिखा गया "संस्कृत भाषा इतनी कठिन है कि उसे सीखने के लिये लगभग सारा जीवन लगाना पड़ता है। ज्ञान (बुद्धि) के मार्ग में

यह शिक्षा कई युगों से बाधक सिद्ध हो रही है। इसे सीखने पर जो लाभ होता है वह इसको सीखने में किये गये परिश्रम की तुलना में नगण्य है।" इस पत्र में आगे क्रमशः संस्कृत व्याकरण, वेदान्त, मीमांसा, न्याय आदि विषयों के शास्त्रीय अध्ययन की निरर्थकता तथा निस्सारता का प्रतिपादन करते हुए अन्त में उपसंहार में लिखा था, "यह संस्कृत शिक्षाप्रणाली देश को अन्धकार में गिरा देगी। क्या यही ब्रिटिश सरकारी नीति है।" राजा राममोहन राय के इस पत्र ने मैकाले की शिक्षा को विजय ही प्रतिध्वनित होती है।

स्वामी दयानन्द की संस्कृत-शिक्षा विषयक देन—

जिस शताब्दी में राजा राममोहन राय ने अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली के प्रचलन का हार्दिक समर्थन किया, नव-जागरण के उसी युग में नवोदय के एक अन्य सूत्रधार, आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने शिक्षा के विषय में अपना मौलिक चिन्तन प्रस्तुत करते हुए परम्परागत शिक्षा-प्रणाली के पुनरुत्थान का अभूतपूर्व प्रयास किया। शिक्षा प्रणाली के रूप में स्वामी दयानन्द ने शिक्षा विषयक जो सूत्र अपने लेखों, ग्रन्थों तथा वक्तव्यों में दिये हैं उनका संकलन और आकलन किया जाना आवश्यक है। अपने प्रमुख ग्रन्थ "सत्यार्थ प्रकाश" के द्वितीय व तृतीय समुल्लास उन्होंने बालकों के लालन-पालन व शिक्षा विषयक ही लिखे हैं। "अथ शिक्षा प्रवक्ष्यामः"—इस सूत्र से द्वितीय समुल्लास का प्रारम्भ होता है। "अथाऽध्यापनविधि व्याख्यास्यामः" के साथ तृतीय समुल्लास की रचना आरम्भ होती है। दोनों अध्यायों में शिक्षा विषयक भारतीय शास्त्रीय आर्य-परिपाटी का विस्तृत विवेचन करते हुए स्वामी दयानन्द ने ब्रह्मचर्य आश्रम, स्वाध्याय और प्रवचन, अध्ययन समाप्ति के पश्चात् दीक्षांत अनुशासन, संस्कृत के शास्त्रीय वाङ्मय का अध्ययनक्रम और पाठ-विधि, त्याज्य और ग्राह्य पुस्तकें, स्त्रियों और शूद्रों का अधिकार, और स्त्री-शिक्षा जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर विचार किया है। संस्कृत के पठन-पाठन के लिये स्वामी दयानन्द ने एक विशिष्ट क्रम निर्धारित किया था। इसका उल्लेख "सत्यार्थ प्रकाश" के अतिरिक्त "ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका" के पठन-पाठन विषय तथा "संस्कार विधि" के वेदारम्भ संस्कार में भी किया है। पठन-पाठन प्रणाली का विस्तृत निर्देश यह सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि स्वामी दयानन्द संस्कृत शिक्षा-प्रणाली के मर्मज्ञ थे तथा वे उसमें क्रान्तिकारी परिवर्तन लाना चाहते थे।

अपनी इस पाठ-विधि को क्रियान्वित करने के लिये स्वामी जी ने स्वयं उत्तरप्रदेश के कई नगरों में संस्कृत पाठशालाओं की स्थापना की। धनीवर्ग के लोगों को उन्होंने पाठशाला संस्थापन के पुनीत कार्य में आर्थिक सहायता देने के लिये प्रेरित किया। इन पाठशालाओं का आदर्श प्राचीन गुरुकुल प्रणाली के अनुरूप रखा गया, जिसके अनुसार छात्र और अध्यापक एक दूसरे के निकट सम्पर्क में रहकर चरित्र-निर्माण के साथ-साथ शास्त्राध्ययन में प्रवृत्त हो सकें।

स्वामी दयानन्द ने ये पाठशालाएं कासगंज, फर्रुखाबाद, मिर्जापुर, छालेसर, काशी आदि स्थानों में स्थापित की। योग्य अध्यापकों के अभाव तथा आर्य ग्रन्थों के पठन-पाठन में छात्रों द्वारा विशेष अभि-रुचि व्यक्त न किये जाने के कारण स्वामी जी को जीवनकाल में ही इन पाठशालाओं को बन्द करना

पड़ा था, तथापि यह स्वीकार करना पड़ेगा कि संस्कृत शिक्षा के प्रचार हेतु स्वामी जी का पाठशाला संस्थापन का यह कार्य वस्तुतः श्लाघनीय था। इन पाठशालाओं में ही आर्यसमाज द्वारा कालान्तर में स्थापित गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के बीज छिपे थे, जिसने भारतीय शिक्षा क्षेत्र में युगान्तकारी परिवर्तन उपस्थित किया।

स्वामी दयानन्द ने संस्कृत शिक्षा प्रणाली को सुगम बनाने के लिये पठन-पाठन व्यवस्था के अन्तर्गत कतिपय पाठ्यग्रन्थ भी लिखे। ऐसे ग्रन्थों में "संस्कृत वाक्य प्रबोध" 'व्यवहार-भानु' तथा "वेदांग-प्रकाश" के चौदह भाग उल्लेखनीय है संस्कृत वाक्य प्रबोध की रचना छात्रों में संस्कृत संभाषण में रुचि उत्पन्न करने तथा उनमें दैनन्दिन विषयों पर संस्कृत के माध्यम से सुगमरीत्या वार्तालाप करने की क्षमता उत्पन्न करने हेतु थी। "व्यहार भानु" छात्रों और अध्यापकों की आचार संहिता है, जिसमें गुरु-शिष्य सम्बन्ध का विवेचन एवं उनके आचार-व्यवहार तथा नीति रीति-विषयक स्वर्णिम सूत्रों का गुम्फन हुआ है "वेदाङ्ग-प्रकाश" पाणिनीय व्याकरण के विविध अङ्गों को सुगम रूप से सीखने का अद्भुत् ग्रन्थ है।

स्वामी दयानन्द केवल पुस्तकीय ज्ञान के ही पक्षपाती नहीं थे। उनकी दृढ़ धारणा थी कि जब तक देश के नवयुवकों को उद्योग, कला कौशल तथा तकनीकी व्यवस्थाओं की शिक्षा नहीं दी जायेगी तब तक देश आर्थिक दृष्टि से समृद्ध नहीं होगा। इसी दृष्टि से कुछ युवकों को जर्मनी भेजा, ताकि वहां रहकर वे औद्योगिक प्रशिक्षण प्राप्त कर सकें तथा देश की सम्पन्नता में अपना योगदान कर सके।

स्वामी दयानन्द के शिक्षा-सिद्धान्त—

संक्षेप में स्वामी दयानन्द के शिक्षा विषयक सूत्रों को इस प्रकार निबद्ध किया जा सकता है :—

१—विद्यार्थी का मुख्य प्रयोजन शास्त्राभ्यास के साथ चरित्र निर्माण है। चरित्र निर्माण की शिक्षा गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में ही सम्भव है। अतः प्राचीन रीति नीति के गुरुकुलों की स्थापना आवश्यक है।

२—पाठ्य ग्रन्थों में उन्हीं पुस्तकों का समावेश होना चाहिये जो साक्षात्कृत धर्मा मन्त्रद्रष्टा ऋषियों की कृतियां है। अनार्ष ग्रन्थ पठन-पाठन क्रम में समाविष्ट नहीं होने चाहिये।

३—संस्कृत शास्त्रों और ईश्वरीय ज्ञानवेद की शिक्षा को सर्वोपरि प्राथमिकता दी जानी चाहिये।

४—शास्त्र के साथ प्राविधिक, कला कौशल की शिक्षा भी जीवन यापन की दृष्टि से आवश्यक है।

५—शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो।

६—बालक और बालिकाओं का सहशिक्षण चरित्र विघातक, फलतः हानिकारक है।

७—कन्या-शिक्षा भी उतनी ही आवश्यक है जितनी बालकों की शिक्षा।

८—शिक्षा के क्षेत्र में राजा और रंक, गरीब अमीर का भेदभाव अवांछनीय है। प्रत्येक छात्र को अपनी योग्यता के अनुसार शिक्षा प्राप्त करने का समान रूप से अधिकार मिलना चाहिये।

९—अवसर और अनुकूलता होने पर विदेशी भाषाएं सीखना भी वांछनीय है।

१०—शिक्षा के द्वारा स्वाभिमान, स्वदेश प्रेम, ईश्वर-भक्ति और स्वावलंबन जैसे गुणों का विकास किया जाना अपेक्षित है।

स्वामी जी के दिवंगत होने के पश्चात् उनके स्थानापन्न आर्यसमाज ने अपने शिक्षा विषयक कार्यक्रम को इसी आधार पर मूर्त रूप दिया।

डी० ए० वी० कॉलेज की शिक्षा पद्धति—

महर्षि दयानन्द के देहान्त के पश्चात् उनके स्मारक के रूप में १८८६ ई० में डी. ए. वी. कॉलेज, लाहौर की स्थापना हुई, जो शीघ्र ही पंजाब की एक शिक्षा का एक अद्वितीय संस्थान बन गया। महात्मा हंसराज जैसे प्रवीण शिक्षा शास्त्री ने अपना समग्र जीवन अर्पित कर डी. ए. वी. कॉलेज को भारतीय शिक्षा का एक सफल केन्द्र बना दिया। डी. ए. वी. कॉलेज को विकसित करने में लाला लाजपतराय तथा पं० गुरुदत्त विद्यार्थी जैसे आर्यसमाज के मूर्धन्य चिन्तकों का हाथ रहा है। शीघ्र ही देश भर में डी. ए. वी. संस्थाओं का जाल बिछ गया। दयानन्द ऐंग्लो वैदिक संस्थाएं जहां पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली के आवश्यक तत्त्वों की उपेक्षा नहीं करती, वहाँ वे भारतीय सभ्यता, संस्कृति और धर्म की आधारभूत संस्कृत भाषा तथा आर्यशास्त्रों के शिक्षण भी सुचारू रूप से व्यवस्था करती है।

डी. ए. वी. कॉलेज, लाहौर की अनेक विशिष्ट उपलब्धियां रहीं। वहां का लालचन्द पुस्तकालय संस्कृत के प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों का अद्वितीय संग्रह था। डी. ए. वी. कॉलेज, लाहौर का पृथक् शोधविभाग था जिसके निदेशक के रूप में सुप्रसिद्ध प्राच्य विद्याविशारद पं० भगवद्दत तथा पद्मभूषण आचार्य विश्वबन्धु ने अनेक प्राचीन महत्त्वपूर्ण संस्कृत ग्रन्थों का सम्पादन और प्रकाशन किया।

पंजाब के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश के कानपुर, देहरादून, दिल्ली, वाराणसी तथा दक्षिण के शोलापुर आदि नगरों में भी कालान्तर में डी. ए. वी. कॉलेजों की स्थापना हुई।

कानपुर का डी. ए. वी. कॉलेज तो उत्तर प्रदेश का बृहत्तम शिक्षण संस्थान है जिसमें सभी संकायों का विधिवत् अध्ययन होता हैं। डी. ए. वी. कॉलेज आन्दोलन ने देश को महात्मा पं० हंसराज, प्रिंसिपल सांईस, दार्शनिक प्रवर डा० दीवान चन्द जैसे प्रख्यात शिक्षा शास्त्री प्रदान किये। विभिन्न विश्वविद्यालयों के उप कुलपति-पद का योग्यतापूर्ण निर्वाह करने वाले (स्वर्गीय) प्रिंसिपल सूर्यभान (उपकुलपति, पंजाब विश्वविद्यालय) तथा डा० दुःखनराम (भूतपूर्व उपकुलपति, बिहार विश्वविद्यालय) आदि शिक्षा-विशेषज्ञ आर्यसमाज के डी. ए. वी. कॉलेज की ही देन है।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली—

वस्तुतः डी. ए. वी. कॉलेज की स्थापना के द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में पौरस्त्य और पाश्चात्य आदर्शों के समन्वय करने की दृष्टि ही प्रधान थी। चेष्टा यह की गयी थी कि इन शिक्षा संस्थाओं में प्राचीन संस्कृत भाषा, दर्शन, साहित्य तथा सम्पूर्ण वैदिक साहित्य का सांगोपांग अध्ययन कराया जाये, साथ ही भौतिक-विज्ञान, सामाजिक विज्ञान तथा अंग्रेजी भाषा और साहित्य का अध्ययन भी अभीष्ट समझा गया। परन्तु आर्यसमाज के शिक्षा समीक्षकों ने शीघ्र ही यह अनुभव किया कि डी. ए. वी. कॉलेज के संचालक पाश्चात्य ज्ञान विज्ञान तथा अंग्रेजी के अध्यापन के प्रति जितने सचेष्ट और आग्रहशील हैं उतने वैदिक वाङ्मय और संस्कृत साहित्य के प्रति नहीं।

इसी दुविधाजनक स्थिति ने गुरुकुल स्थापना के लिये आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के तत्कालीन प्रधान महात्मा मुन्शीराम को प्रेरित किया। महात्मा जी स्वामी दयानन्द के शिक्षा सिद्धान्तों को मूर्त रूप प्रदान करने के हेतु प्राण पण से जुट गये। गुरुकुल के लिये उन्हें यथेष्ट आर्थिक सहायता अविलम्ब उपलब्ध हो गयी और उन्होंने गुजरांवाला में गुरुकुल की स्थापना कर दी, जो कुछ समय पश्चात् मुन्शी अमनसिंह जी द्वारा गंगा पार की रेती के कांगड़ी ग्राम के निकटस्थ अरण्य में चला गया।

स्वामी श्रद्धानन्द के तप, त्याग और श्रम ने गुरुकुल कांगड़ी को देश की एक सर्वोत्तम राष्ट्रीय शिक्षण संस्था बना दिया, जो प्राचीन और आधुनिक शिक्षा प्रणाली का एक सर्वोत्तम सामंजस्य था। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के मूल सूत्र निम्नस्थ हैं।

१—यह एक समन्वित शिक्षा-पद्धति है, जिसमें प्राचीन शिक्षा प्रणाली को आधार बना कर छात्र के वैयक्तिक, चारित्रिक गुणों का विकास किया जाता है। बालक में विद्यमान शक्तियों को विकसित करने का पूर्ण अवसर इस शिक्षण प्रणाली में उपलब्ध होता है। छात्र और अध्यापक का निकटतम सम्पर्क गुरुकुल शिक्षा का एक प्रधान तत्व है। प्राचीन शास्त्रीय शिक्षा के साथ-साथ नवीन ज्ञान विज्ञान एवं पाश्चात्य भाषा और दर्शन की समन्वित शिक्षा गुरुकुल की एक निजी विशेषता है।

२—गुरुकुल शिक्षा प्रणाली ने शिक्षा के माध्यम के प्रश्न को दशाब्दियों पूर्व ही हल कर लिया था। गुरुकुल शिक्षा की एक विशेषता है बालक की मातृभाषा (राष्ट्रभाषा हिन्दी) के माध्यम से उच्च-स्तरीय ज्ञान विज्ञान का शिक्षण। यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि आज स्वतन्त्रा प्राप्ति के ३५ वर्ष पश्चात् भी जब हमारे शिक्षाशास्त्री शिक्षा के माध्यम के रूप में भारतीय भाषाओं को ग्रहण करने में अनेक आपत्तियों और विपत्तियों की अशंका करते है जब कि गुरुकुल कांगड़ी ने कई वर्ष पूर्व ही स्नातक स्तर पर विज्ञान की शिक्षा देने हेतु उच्च कोटि की पाठ्य पुस्तकों का निर्माण कर लिया था। विज्ञान के जो पाठ्य ग्रन्थ उस समय निर्मित हुए उनके नाम यहां दिये जाते हैं।

हिन्दी कमिन्ट्री	प्रोमहेशचरण सिंह
विकासवाद	प्रो० विनायक गणेश साठे
भौतिकी और रसायन	प्रो० रामशरणदास सक्सेना
गुणात्मक विश्लेषण	प्रो० रामशरणदास सक्सेना
वनस्पतिशास्त्र	प्रो० महेशचरण सिंह
अर्थशास्त्र	प्रो० प्राणनाथ विद्यालंकार
राष्ट्रीय आय-व्यय शास्त्र	प्रो० प्राणनाथ विद्यालंकार
राजनीतिशास्त्र	प्रो० प्राणनाथ विद्यालंकार
अर्थशास्त्र	प्रो० बालकृष्ण
राजनीतिशास्त्र	प्रो० बालकृष्ण
मनोविज्ञान	प्रो० सुधाकर

गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार, डा० सत्यकेतु विद्यालङ्कार तथा प्रो० हरिदत्त वेदालङ्कार ने राजनीति, अर्थशास्त्र आदि विभिन्न समाजशास्त्रीय विषयों पर अधुनातन महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की है।

३—गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का एक ध्येय जहाँ चरित्र की दिशा में छात्रों का उचित मार्ग दर्शन करना था, वहाँ उसका एक मुख्य प्रयोजन छात्र समुदाय में राष्ट्रीय भावनाओं की अभिवृद्धि और देशभक्ति के भावों को उदीप्त करना भी रहा। यही कारण है कि ब्रिटिश शासकों ने इन शिक्षण संस्थाओं को हमेशा वक्र दृष्टि से देखा। गुरुकुल शिक्षा संचालकों का भी स्वाभिमान अडिग रहा। अपनी शिक्षा नीति में वे विदेशी शासकों का हस्तक्षेप कभी भी स्वीकार नहीं कर सकते थे। फलतः उन्होंने गौरांग शासकों से कभी आर्थिक अनुदान की न तो याचना की और न ही किसी अन्य प्रकार की सहायता को स्वीकार किया। अंग्रेज प्रशासक गुरुकुलों के प्रति एक बार तो इतने अधिक शंकाकुल हो गये थे कि तत्कालीन वायसराय लार्ड चैम्सफोर्ड और संयुक्त प्रांत के तत्कालीन गवर्नर जेम्स मेस्टन को गुरुकुल कांगड़ी की यात्रा कर उसके संचालक महात्मा मुन्शीराम के समक्ष अपनी शंकाओं का समाधान करना पड़ा था।

गुरुकुल कांगड़ी के ही अनुकरण पर कालान्तर में गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर, गुरुकुल वृन्दावन, चित्तौडगढ़, गुरुकुल झज्जर आदि की स्थापना हुई। संस्कृत और शास्त्रों के सुयोग्य और ख्याति प्राप्त विद्वान् इन गुरुकुलों से निकले हैं। देश, धर्म, समाज, भाषा और संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों में गुरुकुल के स्नातकों ने जो अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है उसका विशद और यथार्थ समीक्षण अभी भविष्य की वस्तु है। गुरुकुल कांगड़ी के स्नातकों में पं० विश्वनाथ विद्यालंकार, पं० बुद्धदेव विद्यालंकार, पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति, पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार (चतुर्वेद भाष्यकार), पं० चन्द्रमणि विद्यालङ्कार (निरुक्त भाष्यकार) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर ने दर्शनों के महान् पं० उदयवीर शास्त्री विद्याभास्कर, डा० सूर्यकान्त, डा० हरिदत्त शास्त्री, पं० देवदत्त शर्मोपाध्याय तथा संस्कृत के मर्मज्ञ विद्वान् और प्रसिद्ध कवि पं० दिलीपदत्त शर्मोपाध्याय जैसी प्रतिभाएं देश को प्रदान की हैं। गुरुकुल वृन्दावन के उल्लेख योग्य स्नातकों में स्वर्गीय पं० द्विजेन्द्रनाथ

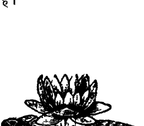
शास्त्री, पं० धर्मेन्द्रनाथशास्त्री, भारतीय साहित्यशास्त्र और दर्शन शास्त्रके आकर ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद और व्याख्या करने वाले स्वर्गीय पं० विश्वेश्वर सिद्धान्तशिरोमणि तथा संस्कृत में "दयानन्द दिग्विजय" जैसे सर्व लक्षणान्वित महाकाव्य प्रणेता अद्भुत् कवि, महाकवि मेधाव्रताचार्य के नाम महत्वपूर्ण हैं।

उपसंहार—

गुरुकुलों की स्थापना के साथ-साथ शतशः विद्यालयों, संस्कृत पाठशालाओं तथा प्रौढ़ शिक्षण संस्थाओं, और रात्रि पाठशालाओं की स्थापना और संचालन भी आर्यसमाज की शिक्षा विषयक एक महत्वपूर्ण देन है। नारी शिक्षा का क्षेत्र भी आर्यसमाज द्वारा उपेक्षित नहीं रहा। जिस समय देश के पुराणपन्थी और रूढ़िवादी लोग कन्या-शिक्षा को शंकाकुल दृष्टि से देखते थे तब आर्यसमाज ने कन्याओं की सर्वोच्च शिक्षा हेतु उच्चकोटि के गुरुकुल महाविद्यालय और कन्या कालिजों की स्थापना की। जालंधर कन्या महाविद्यालय, देहरादून और हाथरस के कन्या गुरुकुल तथा बडौदा का आर्य कन्या महाविद्यालय व पोरबन्दर कन्या गुरुकुल महाविद्यालय इसी प्रकार के सम्पन्न शिक्षण संस्थान है। आज आर्यसमाज का करोडों रुपया शिक्षा कार्य में व्यय हो रहा है और उसकी सर्वोच्च संस्थाएं इन शिक्षण संस्थाओं का योग्यतापूर्वक संचालन कर रही है। कन्या शिक्षण की भांति ही दलित वर्ग के लोगों की शिक्षा का आयोजन भी सर्वप्रथम आर्यसमाज ने ही किया। पं० आत्माराम अमृतसरी बडोदा राज्य में दलित शिक्षा का जो प्रचार किया वह समाज सुधार इतिहास की एक अविस्मरणीय घटना है।

अन्त में फादर इण्डिया के लेखक श्री रंगाअयर के शब्दों में दी गई आर्यसमाज के शिक्षा विषयक कार्य का सिंहावलोकन करने के पश्चात् इस सम्मति को सर्वथा औचित्यपूर्ण ही समझते हैं

अर्थात् आर्यसमाज के विद्यालयों का उद्देश्य राष्ट्रीयता की जाग्रति करना रहा है। उनके समालोचक भी यह स्वीकार करते है कि वे असहयोग के दिनों में अचानक स्थापित हुए उन अल्पजीवी राष्ट्रीय स्कूलों से भिन्न वास्तविक शिक्षण संस्थाएं है।



महाभाष्योक्त ज्ञापक और उनके मूल स्रोत्रों का अध्ययन—

—डा० रामप्रकाश शर्मा
प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

'भवत्याक्षर समाम्नायिकेन धात्वादिस्थस्य ग्रहणम्' इति।

'अइउण् सूत्र में उपदिश्यमान् अकार विवृतप्रयत्नक है। अतः अच् प्रत्याहार में आने वाला आकार भी विवृतप्रयत्नक ही है। यदि अच् प्रत्याहार में आने वाला अकार विवृतप्रयत्नक नहीं माना जायगा, तो दीर्घाकार आदि के साथ ह्रस्व अकार की स्वर्ण संज्ञा न होने कारण अच् प्रत्याहार में दीर्घाकारादि का ग्रहण नहीं हो। सकेगा। ह्रस्व अकार का प्रयत्न संवृत माना गया है। दीर्घाकारादि का प्रयत्न विवृत माना गया है। दोनों में प्रयत्न-भेद हो जाने के कारण 'तुल्यास्य प्रयत्नं सवर्णम्' सूत्र द्वारा सवर्ण संज्ञा नहीं होगी। इस सूत्र के अनुसार जिन वर्णो के स्थान तथा अभ्यान्तर प्रयन्त तुल्य होते हैं उन्हीं वर्णों की परस्पर सर्वण संज्ञा हो सकती है। परस्पर सवर्ण संज्ञा न होने के कारण ह्रस्व अकार से दीर्घादि का ग्रहण नहीं हो सकेगा। 'अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः' सूत्र द्वारा अविधीयमान् अण् (अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ य व ल्) अपने सवर्णो का ही बोधन करते हैं। यदि अकार की सवर्ण संज्ञा दीर्घाकारादि के साथ नहीं होगी तो अकार के ग्रहण से दीर्घाकारादि का ग्रहण नहीं हो सकेगा। इस तरह खट्वा+आढ़कम्=खट्वाढ़कम् यहां 'अकः सवर्णे दीर्घः' सूत्र से दीर्घ नहीं सिद्ध हो सकेगा। अतः अइउण् सूत्र-घटक अकार को विवृत प्रयत्नक स्वीकार किया जाना चाहिये। जिससे प्रत्याहारों में आने वाले अकार से दीर्घाकारादि का ग्रहण हो सके।

जिस तरह अइउण् सूत्र में विद्यमान अकार का विवृत प्रयत्न होना आवश्यक है, उसी तरह सर्वत्र धातु प्रातिपादिक, प्रत्यय, निपात में विद्यमान अकार को विवृतप्रयत्नक ही होना चाहिये, अन्यथा प्रत्याहार अकार के साथ धात्वादिस्थ संवृत अकार की सर्वण संज्ञा न होने के कारण अच्-प्रत्याहार-सम्बन्धी कार्य सम्भव नहीं होगा। धात्वादिस्थ अकार का प्रयत्न विवृत स्वीकार कर लेने पर ही 'शाम्यति,' इत्यादि प्रयोगों में दीर्घादि कार्यों की सिद्धि हो सकती है। इसी अभिप्राय को लेकर वार्तिक द्वारा शंका की गई है। "तस्य विवृतोपदेशादन्यत्रापि विवृतोपदेशः सवर्णग्रहणार्थः" इति। इस वार्तिक को अस्वीकृत करते हुए महाभाष्यकार ने प्रत्याहारस्थ विवृत अकार से धात्वादिस्थ संवृत अकार के ग्रहण के लिये ज्ञापक का उपन्यास किया है "आचार्यप्रवृत्तिज्ञापयतिभवत्याक्षरसमाम्नायिकेन धात्वादिस्थ ग्रहणमिति, यदयमकः सवर्णे दीर्घं इति प्रत्याहारे को ग्रहणं करोति" यदि प्रत्याहारस्थ विवृत अकार से अन्य संवृत अकार का ग्रहण नहीं होता तो 'अकः सवर्णे दीर्घः' सूत्र में 'अकः' का प्रयोग व्यर्थ हो जायगा। 'अकः' के स्थान में इकः कहना चाहिये था। क्योंकि धात्वदिस्थ अकार विवृत न होने के कारण 'अक् नहीं माना

जा सकता है। इस तरह अकार के स्थान में दीर्घ प्राप्त नहीं हो सकता है, दीर्घ विधायक सूत्र में 'अकः' का प्रयोग व्यर्थ हो जायेगा। इस तरह पाणिनि द्वारा किया गया यही 'अकः' का प्रयोग अनुपपन्न होकर ज्ञापन कर रहा है कि "प्रत्याहारस्थ अकार से धात्वादिस्थ अकार का ग्रहण होता है" अर्थात् प्रयत्नभेद होने से असवर्ण भी धात्वादिस्थ अकार अत्व जाति से आक्रान्त होने के कारण विवृत अकार से गृहीत हो जाता है। प्रत्याहार में जातिपक्ष ही स्वीकार करना उचित है। यह सिद्धान्त ज्ञापित कर 'अकः' ग्रहण सार्थक हुआ है।

कैयट ने प्रदीप में भी यही अभिप्राय स्पष्ट किया है "तेन संवृतस्याग्रहणे 'इकः स्वर्ण इति वक्तव्यम्" इस कैयट के ग्रन्थ की व्याख्या करते हुए नागेश भट्ट ने उद्योत में और भी स्पष्ट कर दिया है, 'एवं च प्रयत्नभेदेनासवर्णस्यापि अत्वजात्याक्रान्तस्य विवृतेनाकारेण ग्रहणं ज्ञाप्यत इत्यर्थः' इस तरह यह वचन 'अकः' ग्रहण से ज्ञापित होकर 'शास्त्रशेष' वचन के रूप में स्थित हो सकता है क्योंकि शास्त्र का अङ्गभूत एक सिद्धान्त बना।

पहले भी यह स्पष्ट किया गया है कि ज्ञापक तभी समीचीन कहा जा सकता है जबकि वह ज्ञाप्यार्थ के बिना सर्वथा अनुपपन्न हो। किन्तु यहां अकः ग्रहण ज्ञाप्यार्थ के न होने पर भी जिसका ग्रहण प्रत्याहारस्थ अकार से हो सकता है, उस के लिये सार्थक ही है। जैसे खट्वा+आढकम्=खट्वाकम्, माला+आढकम्=मालाढकम् इत्यादि। कैयट ने स्थापित किया है "अक इत्यकारेण विवृतेन दीर्घस्य विवृतस्य ग्रहणादज्ञापकमेतदित्यर्थः" अर्थात् विवृत अकार से विवृत दीर्घाकार का ग्रहण होने के कारण अक् ग्रहण सार्थक है, अतः यह ज्ञापक नहीं हो सकता है। अतः धात्वादिस्थ अकार का भी विवृतत्वोपदेश ही उचित है।

यह ज्ञापक सैद्धान्तिक नहीं है। केवल प्रासंगिक विचार का विषय है।

२—"नानुबन्ध संकरोऽस्ति"

'अइउण्' सूत्र के भाष्य में यह वचन ज्ञापक के रूप में उपन्यस्त है। यह वचन भी शास्त्र-शेष वचन ही कहा जायगा क्योंकि शास्त्र के एक सिद्धान्त के रूप में उपन्यस्त हुआ है।

अइउण् सूत्र में भाष्यकार ने व्यक्ति पक्ष को लेकर यह विचार आरम्भ किया है कि अक् आदि प्रत्याहारों में इत्संज्ञक ककारादि वर्णों को चिह्न विशेष के रूप में देख कर यह निश्चय किया जा सकता है कि यह अकार 'अइउण्' सूत्र का ही अकार है। अतः अक् आदि प्रत्याहारों में आने वाले अकार को अणप्रत्याहारस्थ समझा जा सकता है। इस अकार से 'अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः' सूत्र की सहायता से सवर्णों का बोध तो सम्भव होगा। किन्तु 'अस्य च्वौ' सूत्र में आए मुण्डित होकर रहना, वही गुप्तचर जिस स्थान, जिस काल में, जिस गुण से युक्त बताया गया है उस स्थान, उस काल में उसी गुण से युक्त होता है। उसी तरह शास्त्र में भी एक ही अकार जिस प्रकृति से यदनुबन्ध-युक्त बताया गया है उस

प्रकृति से तदनुबन्ध निमित्तक हो, कार्य का सम्पादन करेगा। इस तरह यह वचन के रूप में ज्ञापित होने पर भी लोकन्याय से अन्यथा सिद्ध कर दिया गया है। अतः शास्त्र में इस वचन का उपयोग नहीं किया जाता है। लोकसिद्ध अर्थ के लिये वचन कल्पना उचित नहीं है

३—न दीर्घे ह्रस्वाश्रयो विधिर्भवति।

इस सूत्र के भाष्य में यह विचार किया गया है कि . . . . गसहश वर्णैकदेश, उसका वर्णग्रहण से ग्रहण होता है या नहीं। इस तरह का विकल्प प्रस्तुत कर वर्णैकदेश का वर्णग्रहण से ग्रहण होने में कुछ आपत्तियाँ दी गई हैं। उनमें एक आपत्ति यह है कि—दीर्घ में ह्रस्व सम्बन्धी विधि की प्राप्ति होगी। जैसे आलूय, प्रलूय इस प्रयोग में दीर्घ का एकदेश एकमात्रिक खण्ड को ह्रस्व ग्रहण से गृहीत कर 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' इस सूत्र से तुक् का आगम होना चाहिये। इसी आपत्ति को दूर करने के लिये इस ज्ञापक वचन को उपन्यस्त किया गया है 'न दीर्घे ह्रस्वाश्रयो विधिर्भवति' इति। इस वचन का ज्ञापन 'दीर्घात्' सूत्र द्वारा दीर्घ से परे छकार को तुगागम का विधान करने से हो रहा है अन्यथा दीर्घैकदेश को ह्रस्व मानकर ह्रस्व सम्बन्धी विधि 'छे च' सूत्र से ही तुक् का आगम हो जाता 'दीर्घात्' सूत्र व्यर्थ हो जायेगा। इस तरह 'दीर्घात्' सूत्र द्वारा तुगागम के विधान से यह स्पष्ट ज्ञात हो रहा है कि 'न दीर्घे ह्रस्वाश्रयो विधिर्भवति' इति। इस तरह यह वचन वर्णैकदेश का वर्णग्रहण से ग्रहण होने के पक्ष में शास्त्रशेष रूप से उपयोग सम्भव है। किन्तु यह ज्ञापक-वचन एक पक्षीय होने से इसका शास्त्र में विशेष महत्व नहीं दिया गया है। कैयट ने तो इस ज्ञापक के ऊपर दृष्टिपात भी नहीं किया है।

इसी तरह इसी पक्ष को लेकर एक वचन को और उपन्यास किया है—'नाकारस्यस्याकारस्य लोपो भवति' इति। वर्णैकदेस का वर्णग्रहण से ग्रहण होने के पक्ष में एक आपत्ति यह भी उठाई है कि या धातु वा धातु से तृच् प्रत्यय द्वारा सिद्ध होने याता, वाता प्रयोग में 'अतो लोपः' सूत्र से दीर्घैकदेश एक मात्रिक अंश (अकार) का लोप होना चाहिये। यदि 'अतो लोपः' सूत्र में तपर करने के कारण आकारस्थ अकार का लोप नही होने की कल्पना कोई करना चाहे तो यह सम्भव नहीं होगा क्योंकि तपर-करण का प्रयोजन यह होगा कि समस्त आकार का लोप न किया जाय। परन्तु एकदेश अकार के लोप में तपरकरण बाधक नही हो सकता है। इस आपत्ति के समाधान में यह वचन उपन्यस्त है 'नाकारस्यस्याकारस्य लोपो भवति' इति इसका ज्ञापन मुख्य रूप से गापोष्टक् सूत्र में टक् प्रत्यय हो कित् किए जाने से हुआ है। सामगः, छन्दोगः, आदि प्रयोगों में सामादि शब्द के उपपद होने पर गै धातु से विहित टक् प्रत्यय के कित् होने की आवश्यकता 'आतोलोप इटि च' सूत्र से आकार का लोप ही है, यदि आकारस्थ अकार का भी लोप होता तो टक् प्रत्यय को कित् करने की कोई आवश्यकता नहीं होती। अतो लोपः से एकदेश अकार का लोप हो जाने मात्र से सामगः आदि प्रयोगों की सिद्धि हो जाती। परन्तु टक् को कित् कर सम्पूर्ण आकार के लोप का प्रयत्न आचार्य ने किया है इससे स्पष्ट हो जाता है कि 'नाकारस्यस्याकारस्य लोपो भवति' इति। यह ज्ञापक भी शास्त्रशेष के रूप में एकपक्षीय होकर उपन्यस्त हुआ है। अतः इसका भी महत्व शास्त्र में नहीं के बराबर ही है। कैयट ने इस वचन पर भी दृष्टिपात नहीं किया है।

४—भवति ऋकारान्नोपात्वमिति ।

यह वचन वर्णैकदेश को वर्णग्रहण न करने के पक्ष में उपन्यस्त हुआ है। यदि वर्णैकदेश वर्णग्रहण से गृहीत नहीं होगा तो मातृणाम्, पितृणाम् प्रयोगों ऋवर्णों से परे नकार को णत्व करने के लिये स्वतन्त्र वचन करना पड़ेगा। वर्णैकदेश को वर्णग्रहण के गृहीत करने पर 'रषाभ्यां' नोणः समानपदेअट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेपि' से ही सिद्ध हो जायगा स्वतन्त्र वचन मानने की आवश्यकता नहीं होगी। इस आक्षेप पर वर्णैकदेश को वर्णग्रहण से ग्रहण न करने वाले पक्ष में भी स्वतन्त्र वचन की आवश्यकता नहीं होगी। किन्तु 'क्षुम्नादिषु च' सूत्र द्वारा नृनमन् शब्द का क्षुम्नादिगण में पाठ कर णत्व का निषेध करने से ज्ञापित होता है कि ऋवर्ण से परे भी नकार को णत्व होता है। अन्यथा नृनमन शब्द में णत्व निषेध से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि—'भवति ऋकारान्णत्वम्' इति। नृनमन शब्द अखण्ड संज्ञाभूत शब्द है। यदि समस्त खण्ड पद माना जाय तो समानपद में ही णत्व होने के कारण यहां णत्व की प्राप्ति ही सम्भव नहीं होगी। भाष्योक्त ज्ञापक असंगत हो जायगा। नगेश भट्ट ने नृनमनशब्दमिति भाष्य के प्रतीक को लेकर स्पष्ट लिखा है 'संज्ञाभूतमित्यभिप्रायः'। यह वचन शास्त्रशेष मे होकर सम्पूर्णशास्त्र में उपयुक्त होता है।

५—नात्र रपरत्वं भवति इति।

लण् सूत्र के भाष्य में अण् प्रत्याहार को लेकर विचार प्रवृत्त हुआ है कि लण् सूत्र में भी इत्संज्ञक णकार के होने से अण् तथा इण् प्रत्याहारों में संशय होगा कि ये प्रत्याहार पूर्वणकार (अइउण् के णकार) से निष्पन्न हैं या पर णकार लण् के णकार से निष्पन्न हैं। इसी प्रसंग में 'उरण् रपरः' सूत्र को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत कर सन्देह किया गया कि इस सूत्र में अण् पूर्व णकार तक गृहीत है या परणकार तक ? इस सन्देह के समाधान में भाष्यकार ने कहा कि इस 'उरण् रपरः' सूत्र में कोई सन्देह सम्भव नहीं है। यहाँ अण् प्रत्याहार पूर्वणकार तक ही होगा, यह सर्वथा असंदिग्ध है क्योंकि ऋकार के स्थान में पर अण् अर्थात् अ, इ, उ, से अतिरिक्त की सम्भावना ही नहीं है।

इसी प्रसंग के सातत्य में मातृणाम्, पितृणाम् प्रयोगों में आपत्ति उठाई गई है कि यहाँ ऋकार के स्थान में दीर्घ ऋकाररूप पर अण् सम्भव है। उसे भी उरण् रपरः से रपरत्व की प्रसक्ति होने लगेगी, अतः उरण् रपरः सूत्र के अण् प्रत्याहार में सन्देह बना ही है। इस आपत्ति के समाधान में भाष्यकार ने कहा है कि—'आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयतिनात्र रपरत्वं भवति' इति। यदयं ऋत इद्धातोरिति धातुग्रहणं करोति।' 'ऋत इद्धातोः' सूत्र में धातुग्रहण की आवश्यकता यही है कि मातृणाम्, पितृणाम् प्रयोगों में भी रपरत्व होगा तो धातुग्रहण सर्वथा अनर्थक हो जायगा। क्योंकि रपर होने पर अनन्त्य होने के कारण ऋकार के स्थान में इत्व प्राप्त ही नहीं होगा। यहाँ इत्व वारण करने के लिये धातुग्रहण सर्वथा व्यर्थ ही हो जायगा। अतः धातु ग्रहण से ज्ञापित 'नात्र रपरत्वं भवति' इस वचन से मातृणाम् आदि में कोई दोष नहीं होगा। अतः उरण् रपरः सूत्र में अण् प्रत्याहार के पर णकार तक होने का सन्देह निष्प्रयोजन ही है।

इस तरह धातुग्रहण से यह वचन प्रांसगिक रूप से ज्ञापित कर 'उरण् रपरः' में अण् प्रत्याहार के सन्देह को निष्प्रयोजन बता दिया गया है। वस्तुतः ऋत इद्धातोः सूत्र में धातुग्रहण आवश्यक ही है, वह ज्ञापक नहीं हो सकता है, क्योंकि यदि अमन्त्य होने के कारण ऋकार के स्थान में इत्व न किया जाय तो चिकीर्षति जिहीर्षति में भी इत्व नहीं प्राप्त होगा। अतः ये प्रयोग असिद्ध होने लगेंगे। यदि चिकीर्षति जिहीर्षति में कृ, हृ धातु को 'अज्झनगमां' सनि 'सूत्र से दीर्घ होने पर रपर हो जाने के बाद भी उपधा-याश्च सूत्र द्वारा इत्व हो जायगा। इन प्रयोगों में दोष की सम्भावना नहीं होगी, ऐसा स्वीकार किया जाय तो मातृणाम् आदि प्रयोगों में भी दीर्घ होने पर रपर हो जाने के बाद भी उपधायाश्च से इत्व होने लगेगा। अतः धातुग्रहण ऋत इद्धातोः सूत्र में आवश्यक ही है, ज्ञापक नहीं हो सकता जैसा कि कैयट ने स्पष्ट किया है कि—तस्माद्धातुग्रहणस्य सप्रयोजनत्वान्नज्ञापकत्वमित्यर्थः। मातृणाम् आदि प्रयोगों में रपरत्व की प्राप्ति की सम्भावना से उरण् रपरः, सूत्र के अण् प्रत्याहार में सन्देह होगा ही। यहाँ सन्देह की निवृत्ति के लिये उपधान्तर का अन्वेषण करना ही होगा। 'नात्र रपरत्वं भवति' वचन केवल एकदेशीय विचार है।

६—अभेदका गुणाः

वृद्धिरादैच् सूत्र में आकार के तपर करण को लेकर विचार किया गया है। इस पर किसी ने तपरत्व का प्रयोजन सवर्णग्रहण को बताया। यदि आकार को तपर नहीं किया जायगा तो उदात्त, अनुदात्त, स्वरित तीनों सवर्णों आकारों का ग्रहण नहीं होगा। क्योंकि गुण विवक्षित हुआ करते हैं। जो गुण उच्चरित होगा उसी गुण से युक्त आकार की वृद्धि संज्ञा होगी। अन्य गुण से युक्त आकारों की भी वृद्धि संज्ञा विधानार्थं तपर करण आवश्यक होगा। बिना तपर करण के 'तपरस्तत्कालस्य' सूत्र द्वारा समकाल सवर्ण का बोध नहीं हो सकेगा। अतः तपर करण आकार के लिये आवश्यक है। उदात्तादि गुणों का विवक्षित होना लोकतः सिद्ध है। लोक में देखा जाता है कि यदि कोई छात्र उदात्त के स्थान में प्रमादवश अनुदात्त का उच्चारण कर देता है तो उपाध्याय उसे थप्पड़ लगाता है। इस तरह गुण के भेद से वर्ण के भिन्न हो जाने के कारण तपर करण के समस्त आकार का ग्रहण नहीं होता। अतः तपर करण की आवश्यकता बताने पर दूसरे वादी ने गुणों के अविवक्षित होने का पक्ष प्रस्तुत किया। ननु च भी अभेदका अपि गुणा दृश्यन्ते। इति। जैसे मुण्डी, जटी, शिखी विभिन्न गुणों से युक्त होता हुआ भी देवदत्त अपनी संज्ञा का परित्याग नहीं करता है। उसी तरह एक आकार गुण के भेद होने पर भी आकार ही रहेगा।। इस पक्ष में आकार के तपर करण की कोई आवश्यकता नहीं है। इस तरह गुणों की विवक्षा का अविवक्षा दोनों पक्ष लोकसंगत होने से दोनों में कौन पक्ष न्याय संगत होगा, यह विचारणीय है। इस पर भाष्यकार ने कहा है—"अभेदका गुणा इत्येव न्याय्यम्" अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः सूत्र में आचार्य ने अनङ् आदेश को उदात्त बताया है। यदि गुण विवक्षित होते तो अनङ् आदेश को उदात्त गुण से युक्त उच्चारण कर देते, उच्चारण मात्र से उदात्त के विवक्षित होने का कारण अनङ् आदेश उदात्त ही रहता, उसके लिये उदात्त ग्रहण करना व्यर्थ है। यही उदात्त ग्रहण व्यर्थ होकर यह ज्ञापित करता है कि—"अभेदका गुणाः" इति। उदात्तादिगुण अविवक्षित होते हैं। इसलिये उदात्तग्रहण सार्थक सिद्ध हुआ। यदि उदात्त ग्रहण नहीं किया गया होता तो अनङ् के उदात्त गुण से युक्त उच्चारण करने पर भी

उसके अविवक्षित होने के कारण उदात्तत्व की सिद्धि नहीं हो पाती। इसलिये अनङादेश के उदात्तत्व के' लिये प्रयत्न विशेष के रूप में उदात्त ग्रहण करना सार्थक हुआ है। कैयट ने इसे इस तरह स्पष्ट किया है– तस्मादुगुणरहितस्योच्चारणो भीन्नान्तरीयकत्वादुच्चार्यमाणोऽपि गुणः प्रयत्नमन्तेरण न विवक्षित इत्यर्थः। "अभेदकाः गुणाः यह वचन परिभाषेन्दुशेखर के शास्त्रशेष प्रकरण में भी नागेश भट्ट द्वारा व्याख्यात है। यह वचन परिभाषा रूप में व्याकरण-शास्त्र में प्रसिद्ध है। नागेश भट्ट ने इसका व्याख्यान—"असति यत्ने स्वरूपेणोच्चारितो गुणो न भेदको=न विवक्षित इत्यर्थः" इस तरह किया है। अर्थात् किसी विशेष यत्न के बिना स्वरूपतः उच्चरित गुण विवक्षित नहीं पोते हैं। अतएव जहां जो गुण विवक्षित होता है वहां उस गुण का 'अनुदात्तादेरन्तोदात्तात्' इत्यादि स्थल विशेष में उच्चारण किया गया है। यहाँ अनुदात्तादि पद का प्रयोग ही प्रयत्न विशेष किया गया है। इसी तरह उ मः ऊँ सूत्र में अनुनासिकोच्चारण रूपी यत्नाधिक्य देख कर अनुनासिकत्व की विवक्षा समझी जाती है। 'पथिमथ्यृभुक्षामात्' इत्यादि सूत्रों में स्थानी अनुनासिक नकार वर्ण के अनुरूप अनुनासिक आकार का उच्चारण न कर निरनुनासिक आकारादेश के उच्चारण रूपी यत्न के कारण अनुनासिकत्व की विवक्षा की गई है इसीलिये इस वचन के व्याख्यान में "असति यत्ने" इतना अंश और जोड़ा गया है।

७—नाकारस्य गुणो भवति—

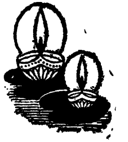
इको गुण वृद्धी सूत्र में इक् ग्रहण के प्रयोजन के विचार के प्रसंग में भाष्यकार ने कहा है कि आकार के स्थान में गुण की निवृत्ति के लिये इक् का ग्रहण करना आवश्यक है। अन्यथा यातः, वातः इन प्रयोगों में भी आकार के स्थान में गुण होने लगेगा। इसी तरह और भी कतिपय प्रयोजन बता कर आकार के स्थान में गुण की निवृत्ति रूप प्रयोजन का निराकरण करने हुए कह, कि—आकारनिवृत्यथन। आचार्यं प्रवृत्तिर्ज्ञापयति—'नाकारस्य गुणो भवति। इति। यदयं 'आतोऽनुपर्सगे क इति ककारमनुबन्ध करोति। निरासेऽपि व्यञ्जननिवृत्यर्थ सूत्रं कर्तव्यमेव'। इस तरह इकोगुणवृद्ध सूत्र मे इक् को सार्थकता सिद्ध हो जाने पर आकार के स्थान में गुण की प्रसक्ति न होने के कारण यह ज्ञापन भी अनावश्यक हो जाता है। यदि इकोगुणवृत्ति के लिये मान्य होता। परन्तु इस सूत्र के रहने पर इस वचन का कोई महत्व नहीं रह जाता है। यह वचन पूर्वपक्ष के स्थापनार्थ केवल प्रासंगिक विचार का ही विषय है।

८—'न व्यञ्जनस्य गुणो भवति'

यह वचन भी इकोगुणवृद्धी सूत्र में इक् के ग्रहण के प्रयोजन के विचार में उपन्यस्त हैं। जैसा कि—'इग्ग्राहणमात्सन्ध्यक्षर व्यञ्जननिवृत्यर्थम्' इस वार्तिक से स्पष्ट किया गया है। इसी वार्तिक की व्याख्या में भाष्यकार ने कहा है 'व्यञ्जननिवृत्यर्थम्—उम्भिता, उम्भितुम्, उम्भितव्यम्। व्यञ्जनस्य गुणः प्राप्नोति। इग्ग्राहणान्न भवति। यदि इकोगुणवृद्धो सूत्र में इक् का ग्रहण न किया जाय तो उम्भिता इत्यादि प्रयोगों में सार्वधातुकार्धधातुकयोः सूत्र द्वारा उम्भ धातु के भकार के स्थान में भी ओष्ठ्यवर्ण होने के कारण ओकार गुण होने लग जायेगा, अतः व्यन्जन वर्ण के स्थान में गुण की विवृत्ति के लिये इग्राहण आवश्यक है। इस प्रयोजन के खण्डन के लिये भाष्यकार में ज्ञापक उपन्यस्त कर कहा कि—व्यञ्जनि–

वृत्यर्थेनापि नार्थः । आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति न व्यञ्जनस्य गुणो भवति, इति । यदयं जनेर्डं शास्ति । 'सतम्यां जनेर्डः सूत्र में ड-प्रत्यय के डित्करण का प्रयोजन यही है कि उपसरजः, मन्दुरजः इत्यादि प्रयोगों में जन धातु से ड प्रत्यय करने पर डित्वसामर्थ्यात् टिलोप हो सके, यदि व्यञ्जन के स्थान में भी गुण होगा तो ड-प्रत्यय का डित्करण व्यर्थ हो जायगा, क्योंकि ड प्रत्यय करने के बाद 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' सूत्र से जन धातु में नकार के स्थान में अकार गुण होकर तीनों अकारों के पर रूप हो जाने से उपसरजः मन्दुरजः आदि प्रयोग सिद्ध हो ही जायेंगे, ड-प्रत्यय का डित्करण व्यर्थ हो जायगा । इससे यह निश्चित हो रहा है कि आचार्य ने यह देखा है कि—'न व्यञ्जनस्य गुणो भवति,' इसीलिये जन् धातु से ड प्रत्यय 'आतो नुपसर्गे कः, सूत्र में क प्रत्यय का कित्करण व्यर्थ हो जायगा । इससे स्पष्ट ज्ञात हो रहा है कि आचार्य पाणिनि को यह स्पष्ट ज्ञात हो रहा है कि 'आकार के स्थान में गुण नहीं होता है ।' यहां गुण करने पर पररूप की अपेक्षा 'अतो लोपः' सूत्र से पर होने के कारण लोप की प्रसक्ति की आशंका नहीं की जा सकती है क्योंकि 'अतो लोपः' सूत्र से आर्धधातुकोपदेश काल में जो अकारान्त हो, उसके ही अकार के लोप का विधान होता है । कैयट ने यह स्पष्ट किया है कि 'अतो लोपस्तु न भवत्यार्धधातुकोपदेशे यदकारान्तं तस्य लोपविधानात्' यद्यपि आगे चलकर भाष्य में 'आतोऽनुपसर्गे कः' सूत्र में कित्करण का प्रयोजन उत्तर सूत्र 'तुन्दशोकयोः परिमृजापनुदोः' में बताकर इसके ज्ञापकत्व का खण्डन कर दिया है ।

(क्रमशः)



पर्यावरण प्रदूषण के निदान में अग्निहोत्र का स्थान-

—बलभद्र कुमार हूजा
कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय (हरिद्वार)

"अन्तरिक्ष के विनाशक तत्वों का विनाश यज्ञ से करो ।[1]अथर्व—१-७-६ ॥

"असुरों का अग्नि ही नाश करती है। इस प्रकार विश्व की यज्ञ द्वारा चिकित्सा होती है ? [2]यजु० २-३०

आज के शहरी वातावरण में औद्योगिक प्रतिष्ठानों के व्यापक समूह से पर्यावरण दूषित हो रहा है। कारखानों की चिमिनियों से फैलता सल्फर, कार्बन डाय आक्साइड एवं विषाक्त धुंआ वायु को दूषित करते रहते हैं। परिवहन वाहनों से उठता हुआ प्रदूषण, जल-कल-ग्रान के विभिन्न संयत्रों से बना यांत्रिक जीवन प्रदूषण के साये में पल रहा है। फलस्वरूप मानवीय जीवन में इस प्रकार कृतिमता के प्रवेश से अनेक बीमारियां चतुष्मुख रूप से व्याप्त है। दूषित वातावरण, संतप्त कोलाहल एवं मानसिक अशान्ति से पीड़ित आज का मानव अनेक प्रकार की समस्याओं से आक्रान्त हो अपने को बैचेन महसूस कर रहा है।

तकनीकि ज्ञान के आधुनिक विस्तार से, बेतहासा मशीनीकरण के इस युग में प्राकृतिक सम्पदा के दोहन की होड मची हुई है। समस्त यांत्रिक जीवन प्रकृति में दुःखद असंतुलन पैदा कर रहा है। फलस्वरूप सम्पूर्ण विश्व के समक्ष वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, आणविक विस्फोट और सर्वाधिक दुःखद पहलू जो इन प्रदूषणों के परिणाम से ही फलीभूत हो रहा है अर्थात् मानसिक प्रदूषण मुंह बाये खड़े है। मानसिक तनावों से जूझता आज का मानव समुदाय सबसे अधिक अशान्त है। प्रदूषणों की इन भयंकर-ताओं के कारण प्रकृति की शक्तियों में असन्तुलन बढ़ता जा रहा है। मानव, जलचर, थलचर और वृक्षवनस्पति सब का अस्तित्व खतरे में है।

वायु के उच्चतम स्तर ओजान का कार्य सूर्य की किरणों में से दाहक किरणों को वक्रीभूत करके उन्हें सौम्य रूप में पृथ्वी पर भेजना है। प्रदूषण के कारण ओजान का यह स्तर नष्ट होने लगता है। अतः दाहक सूर्य किरण सीधी ही पृथ्वी पर आने लगती है, जिसके कारण अनेक व्याधियों का प्रकोप बढ़ने की गरज से आजकल रासायनिक खादों और दवाओं का बेतहाशा एवं असन्तुलित तरीके से उपयोग किया

---

१ दूतो नो अग्ने भूत्वा, यातुधानान् विलापय। अथर्व १-७-६।
२ ये स रूपाणि प्रति मुञ्चमाना असुरा सन्तः स्वधया चरन्ति। यजु० २-३०।

जा रहा है। इन कृत्रिम दवाओं और खादों के कारण जमीन में विषैलापन बढ़ने की संभावनाएं उत्पन्न हो रही हैं। अनेक प्रकार के शारीरिक रोग भी धरती पुत्र किसानों में बढ़ते जा रहे हैं। आणविक शक्ति परीक्षणों से भूगर्भ तथा जलाशयों में गर्मी पैदा होकर अणु उत्सर्जित विकिरण एवं रेडियो सक्रियता धूल से फैलता विषैलापन सारे वातावरण को जहरीला बना देता है जिससे प्राकृतिक शक्तियों में विशेष प्रकार का ध्वंश पैदा हो रहा है। जोधपुर विश्वविद्यालय के प्राणीशास्त्र विभाग द्वारा सितम्बर ८० में आयोजित सेमिनार में हमारे पर्यावरण का मूल्यांकन विषय पर बोलते हुए प्रो० एम० एल० माथुर ने बनों की कटाई तथा पेड़ों की बढ़ती कमी पर गम्भीर चिन्ता व्यक्त की। इस सेमीनार से सम्मिलित वैज्ञानिकों ने चेतावनी दी कि गांवों में उर्जा के स्रोत के रूप में अन्य कोई विकल्प नहीं मिला तो दस साल बाद ईंधन की लकड़ी का जो संकट आयेगा वह वर्तमान तेल संकट से भी ज्यादा भयंकर होगा। प्राकृतिक वन सम्पदा को नुकसान पहुँचाना मानवता के लिये एक गम्भीर खतरा है।

चिपको आन्दोलन के जनक सुन्दरलाल बहुगुणा का कथन एक कटु सत्य है कि पेड़ों की कटाई से पिछले दस वर्षों में भूस्खलन की घटनाओं में जहाँ अत्यधिक वृद्धि हुई है वहाँ पर्यावरण के कारण पर्वतीय इलाकों में बाढ़ों की विनाशलीला भयंकर रूप धारण करती जा रही है आज मानवीय जीवन की समस्याओं के समाधान में प्राकृतिक वन संरक्षण को अनदेखा नहीं किया जा सकता। अतः धर्म विज्ञान और प्रकृति में सन्तुलन होना आवश्यक है। प्रदूषण की मूल समस्याएं उत्पन्न हो वहीं से होती है जब हम अपनी आवश्यकताओं के लिये सृष्टि की प्राकृतिक व्यवस्था में हस्तक्षेप करते हैं। वातावरण को विशुद्ध करने हेतु वृक्षारोपण का कार्यक्रम व्यापक स्तर पर मनुष्य को उपदेश दिया गया है जिसमें उसे प्रदूषणों की रोकथाम के लिये सूर्य की आराधना करने को कहा है "सूर्य की किरणों से अपने धन को तथा अपने को शुद्ध करो।" [1]आरोग्यदाता को सूर्य प्रकाश हमारे घरों में अधिकाधिक पड़ना चाहिये। ऋषि दयानन्द ने २०वीं शताब्दी में उत्पन्न हुई इन समस्याओं का मानों आज से सौ वर्ष पहले ही दर्शन कर लिया था। तभी उन्होंने आर्यजन के सन्मुख प्रदूषण निवारण हेतु एक ऐसा अद्भुत साधन प्रस्तुत किया जिस पर यदि आज के वैज्ञानिक गम्भीरता से गौर करें तो शायद प्रदूषण की समस्या के निदान से मानव जाति के हाथ एक महत्वपूर्ण नुसखा उपलब्ध हो जाय। वह साधन है दैनिक अग्नि होत्र का। अपने ग्रन्थ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में स्वामी दयानन्द लिखते हैं—

अग्नि-होत्र से ले के अश्वमेध पर्यन्त जो कर्मकाण्ड है, उसमें चार प्रकार के द्रव्यों का होम करना होता है—एक सुगन्ध गुण युक्त, जो कस्तूरी केशरादि है, दूसरा मिष्ट गुण युक्त जो कि गुड़ और शहद आदि कहाते हैं, तीसरा पुष्टिकार गुण युक्त, जो घृत, दुग्ध और अन्न आदि हैं, और चौथा रोगनाशक गुण युक्त जो कि सोमलतादि औषधि आदि है। इन चारों का परस्पर शोधन संस्कार और यथायोग्य मिला के अग्नि में युक्तिपूर्वक जो होम किया जाता है, वह वायु और वृष्टिजल की शुद्धि करने वाला होता है। इससे सब जगत को सुख होता है।

---

१ "स नो मृडाति तन्वे ऋजुगो सृजन्" अथर्व १-१२-१।

ऋषि दयानन्द ने वातावरण की विषाक्त स्थिति को अत्यधिक गम्भीरता से लिया तथा उन्होंने मनुष्यों को उपदेश दिया "हे मनुष्यों तुम लोग वायु, औषधि और वर्षाजल की शुद्धि से, सबके उपकार के अर्थ घृतादि शुद्ध वस्तुओं और समिधा अर्थात् आम्र व ढाक आदि काष्ठों से अतिथि रूप अग्नि को नित्य प्रकाशमान करो।" [1]ऋषि दयानन्द का कहना था कि मनुष्य संसार में मल विसर्जन, श्वास प्रश्वास आदि के द्वारा जो प्रदूषण फैलता है उसकी निवृत्ति हेतु अग्निहोत्र आदि कर्मों में उसे अवश्य संलग्न होना चाहिये जिससे वातावरण की शुद्धता में वह अपना योगदान दे सके।

यजुर्वेद में एक स्थल पर आया है "अद्रिरसि वनस्पतयः" वनस्पति से अर्थात् मेघ बनते है। वनस्पति, घृत आदि की यज्ञ में जब आहुति दी जाती है तो सूक्ष्म एवं शक्तिशाली होकर वायु प्रसारित होती है।

सायंकालीन यज्ञ आहुतियों की व्याख्या करते हुए ऋषि दयानन्द मानव समाज को आह्वान करते हैं "अग्नि जो ज्योतिस्वरूप परमेश्वर है, उसकी आज्ञा से हम लोग परोपकार के लिये होम करते हैं और उसका रचा हुआ यह भौतिक अग्नि इसलिये है कि वह उन द्रव्यों को परमाणु रूप करके वायु और वर्षाजल के साथ मिला के शुद्ध कर दे। जिससे सब संसार को सुख और आरोग्यता की वृद्धि हो।" [2]जलवायु की शुद्धिकरण प्रक्रिया अग्निहोत्र की व्यवस्था से सम्भव है। यजुर्वेद में एक स्थल पर आया है।" जो अग्नि परमेश्वर सूर्यादि लोको में व्याप्त वायु और रात्रि के साथ संसार का परमहितकारक है, वह हमको विदित होकर हमारे किये गये पर्यावरण दोष को दूर करे।"[3]

प्राकृतिक सन्तुलन—

इसी प्रकार अथर्ववेद में एक स्थल पर आता है "विश्व के रचयिता ने यज्ञ के द्वारा प्रकृति का सन्तुलन किया।" [1]अग्नि में यह सामर्थ्य है कि वह अनेक प्रकार के विषाक्तताओं को समेट करके उसे शुद्ध विशुद्ध कर देती है। अतः हवन से शारीरिक रोगों की निवृत्ति तथा प्रदूषण की रोकथाम की जा सकती है। इस सम्बन्ध में अथर्ववेद में ही कथन है "अज्ञात रोग और ज्ञात रोग, राजयक्ष्मा रोग, वातावरण की विषाक्तता, आदि दोषों को इन्द्र और अग्नि की आहुतियों से दूर किया जाता।" [2]इसी प्रसंग में अनेक मन्त्रों में यह सिद्ध किया गया है कि प्रकृति को शक्तियों में परस्पर सन्तुलन एवं तालमेल करने में अग्निहोत्र की आश्चर्यजनक भूमिका है" हवन में प्रदूषण को रोकने की हजारों शक्तियां है। इससे मनुष्य का जीवन सौ वर्ष से अधिक हो सकेगा।" [3]यज्ञ में प्रयुक्त किये घृत, दूध, मधु, अन्नादि के सूक्ष्म अंश वृष्टि जल के साथ परिस्रुत होकर इस पृथ्वी पर वायु जल एवं अन्न के माध्यम से प्राप्त होते

१ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका
२ ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका। वैदिक यन्त्रालय।
३ सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्रेन्द्रवत्या, जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा। यजु० ३-६-१०।

हैं तो वे बल एवं पराक्रम के वहन करने वाले हो जाते है।"[4]

वर्षा विज्ञान—

स्पष्ट है कि यज्ञ प्रारम्भ होने पर सर्वप्रथम प्रभाव वायु के तापमान पर पड़ता है। वायु गरम होकर ऊपर जाती है तथा चारों ओर से वायु का प्रवाह इस प्रकार खाली हुए स्थान की ओर होने लगता है। आहुतियों के कारण कभी तो गर्मी अधिक होती है, कभी कुछ कम। यज्ञ से प्रयुक्त आहुति द्रव्यों की वाष्पमय धूम्र एवं सूक्ष्म अंश युक्त परमाणुओं को ऊपर फेंकती रहती है। गैस युक्त कण जब मेघों में प्रसारित होता है तो उन पर मेघों की वाष्प जम कर वर्षा देती है। शतपथ ब्राह्मण के प्रमाण के आधार पर स्वामी दयानन्द ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में सिद्ध किया है "जो होम करने के द्रव्य अग्नि में डाले जाते है, उनमें धुंआ और भांप उत्पन्न होते है, क्योंकि अग्नि का यही स्वभाव है कि (वह वृक्ष, औषधि, वनस्पति तथा जलादि) पदार्थों में प्रवेश करके उनकों भिन्न-भिन्न कर देता है। फिर वे हलके होके वायु के साथ ऊपर आकाश में चढ़ जाते हैं। उनमें जितना जल का अंश है वह भांप कहाता है, और जो शुष्क है वह पृथिवी का भाग है, फिर वे परस्पर मिल के बादल होके उनसे वृष्टि से (यज्ञ आदि) औषधि, औषधियों से अन्न, अन्न से वीर्य, वीर्य से शरीर और शरीर से कर्म बनता है।"

ऋषि दयानन्द ने पूर्वमीमांसा धर्मशास्त्र का सन्दर्भ देते हुए लिखा है "सुगन्धादियुक्त चार प्रकार के द्रव्यों का अच्छी प्रकार संस्कार करके अग्नि में होम करने से जगत का अत्यन्त उपकार होता है। जैसे दाल और शाक आदि में सुगन्ध द्रव्य और घी इन दोनों को चमचे में अग्नि पर तपा के उनमें छोंक देने से वे सुगन्धित हो जाते हैं, क्योंकि उस सुगन्ध द्रव्य और घी के अणु उनको सुगन्धित करके दाल आदि पदार्थों को पुष्टि और रुचि बढ़ाने वाले कर देते हैं, वैसे ही यज्ञ से जो भांप उठता है, वह भी वायु और वृष्टि के जल को निर्दोष और सुगन्धित करके सब जगत को सुखी करता है, इससे वह यज्ञ परोपकार के लिये ही होता है।"

इसी प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण का हवाला देते हुए स्वामी जी आगे लिखते है" मनुष्यों का समूह है, उसी के सुख के लिये यह होता है, और संस्कार किये द्रव्यों का होम करने वाला जो विद्वान् मनुष्य है, वह भी आनन्द को प्राप्त होता है, क्योंकि जो मनुष्य जगत का उपकार करेगा, उसको उतना ही ईश्वर की व्यवस्था से सुख प्राप्त होगा। इसलिये यज्ञ का अर्थवाद यह है कि अनर्थ दोषों को हटा के जगत में आनन्द को बढ़ाता है। परन्तु होम के द्रव्यों का उत्तम संस्कार और होम के करने वाले मनुष्यों को होम करने की श्रेष्ठ विद्या अवश्य ज्ञात होनी चाहिये। सो इसी प्रकार के यज्ञ करने से सब को उत्तम फल प्राप्त होता है, विशेष करके यज्ञ कर्ता को, अन्यथा नहीं।

---

१ इमं य विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः अथर्व० २-३३-५।

२ मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्माद्रुत राजयक्ष्मात् अथर्व ३-११-१।

३ शतं त इन्द्रों अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम् अथर्व ३-११-४।

४ ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्।
स्वधा स्थ तर्पयत में पितृ न ॥ यजु० २-३४ ॥

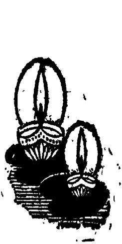
तैत्तिरीय उपनिषद में प्रदूषणों की रोकथाम में अग्निहोत्र का महत्त्व दिग्दर्शित किया गया है जिसे ऋषि दयानन्द ने लिखा है—"परमात्मा के अनन्त सामर्थ्य से आकाश, वायु अग्नि, जल और पृथ्वी आदि तत्त्व उत्पन्न हुए है और उनमें ही पूर्वोक्त क्रम के अनुसार शरीर आदि उत्पत्ति, जीवन और प्रलय को प्राप्त होते हैं, यहाँ अन्न का नाम ब्रह्म है, क्योंकि जिसका जो कर्म है वह उसी में मिलता है। वैसे ही ईश्वर के सामर्थ्य से जगत की तीनों अवस्था होती है, और सब जीवों के जीवन का मुख्य साधन है, इससे अन्न को ब्रह्म कहते हैं। जब होम से वायु, जल और औषधि आदि शुद्ध होते हैं, तब सब जगत को सुख, और अशुद्ध होने से सबको दुःख होता है। इससे इनकी शुद्धि अवश्य करनी चाहिये।

सृष्टि में फैले व्यापक प्रदूषण को ऋषि दयानन्द ने अत्यन्त वैज्ञानिक तरीके से उसे दूर करने के उपाय पर चिन्तन किया। उन्होंने इसी ग्रन्थ में इस दृष्टिकोण को जनमानस को समझाते हुए लिखा वायु मण्डल की "शुद्धि करने में दो प्रकार का प्रयत्न है–एक तो ईश्वर का किया हुआ, और दूसरा जीव का। उनमें से ईश्वर का किया यह है कि उसने अग्नि रूप सूर्य और सुगन्धमय पुष्पादि पदार्थों को उत्पन्न किया है। वह सूर्य निरन्तर सब जगत के रसों को पूर्वोक्त प्रकार से ऊपर खेंचता है और जो पुष्पादि का सुगन्ध है वह भी दुर्गन्ध को निवारण करता रहता है। परन्तु वे परमाणु सुगन्ध और दुर्गन्धयुक्त होने से जल और वायु को भी मध्यम गुण वाले कर देते हैं। उस जल की वृष्टि से औषधि, अन्न, वीर्य और शरीरादि भी मध्यम गुण वाले हो जाते है और उनके योग से बुद्धि, बल, पराक्रम, धैर्य और शूरवीरादि गुण भी मध्यम ही होते है, क्योंकि जैसा कारण होता है, उसका वैसा ही कार्य होता है? यह दुर्गन्ध से वायु और वृष्टि जल का दोषयुक्त होना सर्वत्र देखने में आता है। सो यह दोष ईश्वर की सृष्टि से नहीं, किन्तु मनुष्यों ही की सृष्टि से होता है। इस कारण से उसका निवारण करना भी मनुष्यों ही को उचित है।"

क्योंकि सबके उपकार करने वाले यज्ञ को नहीं करने से मनुष्यों को दोष लगता है। जहाँ जितने मनुष्य आदि के समुदाय अधिक होते हैं, वहाँ उतना ही दुर्गन्ध भी अधिक होता है। वह ईश्वर की सृष्टि से नहीं, किन्तु मनुष्यादि प्राणियों से निमित्त से ही उत्पन्न होता है। क्योंकि हाथी, घोड़ा-गाय आदि के समुदायों को मनुष्य अपने ही सुख के लिये इकठ्ठा करते है, इससे उन पशुओं से भी जो अधिक दुर्गन्ध उत्पन्न होता है सो मनुष्यों के ही सुख की इच्छा से होता है। इससे क्या आया कि जब वायु और वृष्टि जल को बिगाड़ने वाला सब दुर्गन्ध मनुष्यों के ही निमित्त से उत्पन्न होता है तो उसका निवारण करना भी उनको ही योग्य है।"

स्वामी दयानन्द ने एक स्थल पर कहा है—"जितने प्राणी देहधारी जगत में हैं, उनमें से मनुष्य ही उत्तम है। इससे वे ही उपकार और अनुपकार को जानने के योग्य है। मनन नाम विचार का है, जिसके होने से ही मनुष्य नाम होता है, अन्यथा नहीं। क्योंकि ईश्वर ने मनुष्य के शरीर में परमाणु आदि के संयोग विशेष (से विज्ञानोत्पति के अनुकूल अवयव) इस प्रकार रचे हैं कि जिनसे उनको ज्ञान की उत्पति होती है। इसी कारण से धर्म का अनुष्ठान और अधर्म का त्याग करने को भी वे ही योग्य होते हैं, अन्य नहीं। इससे सबके उपकार के लिये यज्ञ का अनुष्ठान भी उन्हीं को करना उचित है।"

स्वामी दयानन्द के इन व्याख्यानों के सन्दर्भ में आर्य समाजों और आर्य व्यक्तियों ने यज्ञ की महिमा को पहचाना और यथासम्भव अपने त्योहारों, सम्मेलनों और गृहों में विधिवत् होम यज्ञ करने की परिपाटी डाली। लेकिन ऐसा लगता है कि यह यज्ञ धार्मिक कर्मकाण्ड के भंवर में फंस गये और वैज्ञानिकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट नहीं हुआ। कदाचित् उसका कारण यह रहा होगा कि अब तक प्रदूषण की समस्या की गम्भीरता से वैज्ञानिक प्रायः अनभिज्ञ ही थे। यह समस्या तो अब पिछले १० वर्षों से ही दृष्टिगत हुई है। और अब जब कि आधुनिक वैज्ञानिक पूरे वेग से इस समस्या के निदान की खोज में तत्पर हैं दयानन्द का फार्मूला उन के समक्ष विश्लेषण और अनुसंधान हेतु उपस्थित है।



गतांक से आगे—

राम साहित्य की व्यापकता—

—डॉ० राकेश शास्त्री

२–अध्यात्म रामायण—

रामकथा की दृष्टि से अध्यात्म-रामायण बहुत गौण है परन्तु रामभक्ति के विकास में इसका स्थान निश्चित ही महत्वपूर्ण है। वेदान्त दर्शन के अनुसार रामभक्ति का महत्व प्रतिपादित करना इसका मुख्य उद्देश्य है। इस अध्यात्म रामायण का परवर्ती रामायणों एवं रामकथाओं पर बहुत गहरा प्रभाव हुआ है।

३–अद्भुत रामायण—

रामकथा की परम्परा में अद्भुत रामायण के अनेक प्रसंग अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

४–आनन्द रामायण—

बारह हजार दो सौ बावन श्लोकों का यह वृहदाकार ग्रन्थ अनेक विचित्र घटनाओं से भरा पड़ा है।

५–तत्त्व संग्रह रामायण—

तत्त्व संग्रह रामायण का प्रमुख उद्देश्य राम के परब्रह्मत्त्व का प्रतिपादन करना है। इसकी भूमिका में राम को विष्णु, शिव, ब्रह्मा, हरिहर, त्रिमूर्ति तथा परब्रह्म का अवतार माना गया है। इस रचना का प्रमुख आधार ग्रन्थ धर्मखण्ड है। तत्त्व संग्रह रामायण का कोई प्रसंग मौलिक तथा विशेष रूप से रामकथा के सन्दर्भ में उल्लेखनीय नहीं है। रामभक्ति की दृष्टि से इस रचना की विशेषता यह है कि इसमें राम की दास्य भक्ति के साथ-साथ अद्वैत रामभक्ति का भी उल्लेख किया गया है।

६–काल निर्णय रामायण—

कुछ रामायण ऐसे उपलब्ध हैं जिनमें रामकथा की प्रमुख घटनाओं की तिथियाँ दी गयी है। इस का सम्भवतः सबसे अधिक पुरातन रूप स्कन्द महापुराण तथा पद्मपुराण के अन्तर्गत उपलब्ध होता है।

७–मन्त्र रामायण—

इस रचना का मुख्य उद्देश्य है रामायण के वेद मूलत्त्व का प्रतिपादन करना। रामायण के वेद

मूलत्त्व को एक प्रसिद्ध श्लोक द्वारा व्यक्त किया जाता है, जिसका आशय है, राम के प्रकट होने के साथ–साथ वेद भी रामायण के रूप में प्रकट हुए––

वेद वेद्य परे पुंसि जाते दशरथात्मजे ।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना ॥

८–वेदान्त रामायण––

इस रामायण में राम के प्रश्न करने पर उत्तर में बाल्मीकि ने परशुराम के जन्म तथा चरित्र का वृत्तान्त वेदान्त रामायण के रूप में कहा है ।

६–अन्य रामायण––

हिन्दुत्व नामक ग्रन्थ में पं० धर्मराज शास्त्री की टिप्पणियों के आधार पर श्री रामदास गौड ने उन्नीस रामायणों का परिचय दिया है । वे इस प्रकार है––

१––महारामायण
२ संवृत्त रामायण
३––लोमश रामायण
४–– अगस्त्य रामायण
५––मंजुल रामायण
६––सौपद्म रामायण
७––रामायण महामाला
८––सौहार्द रामायण
६––रामायण मणिरत्न
१०––सौर्य्य रामायण
११––चान्द्र रामायण
१२––मैन्द रामायण
१३––स्वायंभुव रामायण
१४––सुब्रह्म रामायण
१५––सुवर्चस रामायण
१६––देव रामायण
१७श्रवण रामायण
१८––दुरत रामायण
१६––रामायण चम्पू ।

तथा अन्य संस्कृत धार्मिक साहित्य में रामकथा––

रामकथा से सम्बद्ध कुछ अन्य संस्कृत धार्मिक रचनाएं निम्न हैं––

१ जैमिनि भारत––

रामकथा की इस रचना के अंशरूप अथवा आधारित अनेक रचनाएं समझी जाती हैं ।
ऐसी ही तीन रचनाओं का नाम उल्लेखनीय हैं––
अ––जैमिनीय अश्वमेध
आ––मैरावण चरित अथवा हनुमद्विजटा
इ––सहस्रमुखरावण चरितम्

(क्रमशः)

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय समाचार—

५ नवम्बर १९८२ को १५ हनुमान रोड, आर्यसमाज, नई दिल्ली में आयोजित किये गये कवि सम्मेलन की अध्यक्षता आचार्य एवं उपकुलपति श्री रामप्रसाद वेदालङ्कार ने की।

१०–११ नवम्बर, १९८२ को विद्वान् डॉ० रूप नागपाल ने "अस्तित्ववाद और आधुनिक चिन्तन" विषय पर वेद एवं कला महाविद्यालय में एक व्याख्यान दिया। उनका मत था कि अस्तित्ववाद बीसवीं शताब्दी में द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् विकसित हुआ एक नवीन दर्शन है तथा इसके प्रवर्तक स्व० विद्वान् जीन पाल सार्त्रे हैं। इस सन्दर्भ में उन्होंने यह मत भी व्यक्त किया कि यदि दर्शन की इस शाखा के इस इतिहास को खोजा जाए, तो यह ज्ञात होगा कि इसका विकास छठी शताब्दी ई० पू० में हो चुका था। इस सभा का संयोजन अंग्रेजी विभाग के रीडर एवं अध्यक्ष श्री सदाशिव भगत ने किया।

नवम्बर माह में विश्वविद्यालय के कुलसचिव, डॉ० जबरसिंह सेंगर ने स्थानीय एस० एम० जे० एन० महाविद्यालय के इतिहास विभाग की परिषद् का उद्घाटन किया।

